नाटक माला सं० ८१

सम्पादक—

शिवरामदास गुप्त,

काशी।

मुद्रक—

शिवराम सिंह,

नेशनल प्रेस, बनारस कैण्ट।

श्रीहरिः

दो शब्द ।
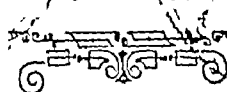
हमारे मित्र बाबू शिवरामदास गुप्तने नाट्य जगत्के सूर्य्य सम प्रतिभाशाली स्वर्गीय द्विजेन्द्र लाल राय के 'परपारे' नाटक का छायानुवाद किया है, गुप्तजीने केवल छायानुवाद ही नहीं किया हैं, वर 'पर पारे' नाटक को परिवर्द्धित और परिवर्तित कर हिन्दी-रङ्गमञ्चोपयोगी नाटक का रूप दिया है । मूल में यह नाटक पाँच अङ्क का है, इसके अनुवाद भी पांचही अङ्क के हैं, अत इस नाटक का अभिनय होना हिन्दी रङ्ग-मञ्च पर एक असम्भव सा कार्य्य था, जिसे गुप्तजी ने बडे परिश्रम से हमारे रङ्गमञ्च के उपयुक्त बना के हिन्दी भाषा की वडी सेवा की है । इस नाटक की प्रशसा में इतना ही कहना अलम् होगा, कि नाटकीय जगत का जो मनुष्य स्वर्गीय राय साहब के 'परपारे' नाटकको नहीं देखा और पढा है, वह सचमुच नाट्य कला और नाटकीय साहित्य से बिलकुल कोरा है । अस्तु ।

वर्त्तमान नाटक 'मेरी आशा' उस 'परपारे' नाटक रत्नाकर के देदीप्यमान चरित्रों का सग्रह है । नाटक के गुण दोष परखने के लिये कवि हृदय चाहिये । कविही नाटक के गुण दोष को अच्छी तरह परख सकता है । मैं कवि नहीं हू, अत इस नाटक के गुण दोष को पाठकों के सम्मुख रखने में असमर्थ हू, किन्तु नाटक का वह प्रधान गुण इस पुस्तक में वर्त्तमान है, जिसे दृश्य काव्य का प्रधान गुण समझना चाहिये । अर्थात् नाटक में जिस रस का उल्लेख हो, उसका प्रभाव सीधा दर्शकों के हृदय पर पडे ।

कहने का तात्पर्य यह है, कि यदि पात्र करुणा रस का वर्णन करता हो, तो दर्शकों की आँखों में भी आँसू छलछला जायें, यदि पात्र क्रोध प्रकाश कर रहा हो, तो दर्शकों के हृदय में भी क्रोध का सञ्चार हो। यही नाटक और नाटककार की सफलता है और कार्य्य कुशल नट का इस भाव का प्रदर्शन ही उसकी छाया का पराकाष्ठा है। मैंने 'मेरी आशा' को इसी आशा से पढी है।

प्रसन्नता है, कि गुप्त महाशय ने इस नाटक में इस भाव को बहुत कुछ निबाहा है, 'मेरी आशा' की भाषा टकसाली और आम फहम है। न तो अर्बी, फारसी की भरमार है और न संस्कृत की कादम्बरी उठा के 'मयवा' की जगह 'त्रिडौजा' लिखने का प्रयास है। साथ ही मूल लेखक के भावों की भी अपने अनाप शनाप विचारों से हत्या नहीं की गई है। मेरा अनुमान है, कि भिन्न भाषा के नाटकों का यदि ऐसा भी रूप देके हिन्दी भाषा के नाटक-लेखक हिन्दी रङ्ग-मञ्च के लिये नाटक तय्यार करते, तो हिन्दी भाषा-भण्डार भी उपयोगी नाटकों से पूर्ण हो जाता। गुप्त महाशय "मेरी-आशा" से ही सन्तुष्ट न हो जायेंगे, वर मेरी आशा है, कि वह हिन्दी-माता के चरणों में शीघ्र ही कुछ और लेके उपस्थित होंगे, कारण कि आप का नाटकीय हृदय इस सेवा का उपयुक्त पात्र है।

सराय गोवर्धन
बनारस सिटी।
माघ पूर्णिमा १९८४

महादेव सिंह शर्म्मा
एम० ए०

श्रीयुत द्विजेन्द्र लाल जी राय के नाटकों द्वारा साहित्य की जो पुष्टि हो रही है वह विख्यात है। यह राय जी के नाटकों ही का प्रकाश है जो आजकल बड़े २ नाटककार भी नित्य नये नये नाटक लेकर नाट्याकाश में नक्षत्र गण के सदृश उदय हो रहे हैं। कोई उनकी कीर्ति को स्वीकार करता है कोई नहीं। मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि राय जी के 'परपारे' नाटक को हिन्दी रंग मंच के योग्य बनाऊँ। परन्तु कई बार प्रयत्न करने पर भी सम्पूर्ण न कर सका। अतः हताश होकर इसका भार थियेट्रिकल कम्पनी के एक मुंशी को सौंप दिया। मुन्शी महाशय ने एक माह में इस नाटक को 'आँखों का गुनाह' नाम से लिख डाला। नाटक छपते समय मूल नाटक का ऐसा नष्ट भ्रष्ट रूप देखकर मुझे बड़ाही दुःख हुआ और स्वयं सम्पूर्ण न करने की पीड़ा हृदय में हो उठी। अस्तु थोड़े दिन हुए कि मेरे मित्र बा० बनारसी दास खन्ना ने 'आँखों का गुनाह' नाटक को श्रीनागरी नाटक मंडली में खेलना विचारा और मंडली ने निश्चित भी कर लिया। परन्तु शर्त यही हुई कि मैं उसे नये रूप में लिखूँ।

मैं कोई कवि नहीं, नाटककार नहीं परन्तु मित्र के उत्साह के आगे सर झुकाना ही पड़ा। अस्तु अपने बाल स्नेही मित्र बा० आनन्द प्रसाद जी कपूर जो कि एक अच्छे नाटककार और नट भी हैं, उनकी शैली का अनुकरण कर मैं इस नाटक को रोचक और रोमाचकारी बनाने की चेष्टा

करने लगा। "करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान" राय जी के प्रताप से किसी प्रकार नाटक को समाप्त कर डाला। नाटक कैसा है, कहां तक सफलीभूत हुआ, यह विज्ञ पाठक जाने।

इच्छुक मन था श्री चरणों का सेवा की थी अभिलाषा।
नाटक जीवन पूर्ण किया मैं सेवा कर हिन्दी भाषा॥
नाट्य भवन में नाटक रचकर अभिनय पूर्ण किया प्रभुने।
आशा पर है जीवन निर्भर जीवन है "मेरी आशा"॥

इस नाटकके संशोधन करने में बा० महादेव सिंह शर्मा एम० ए० पंडित मारकण्डेय जी पांडे 'मधुप' और मेरे परम मित्र एस० जे० अहमद साहब ने जो सहायता दी है, उसके लिये मैं आप लोगों का अत्यन्त आभारी हूँ। साथही बा० आनन्द प्रसाद कपूर अर बा० बनारसी दास का भी कृतज्ञ हूँ।

सफल मनोरथ आज हुआ जो थी मन में प्रत्याशा।
फूले फले "दास" यह प्रेमी पूर्ण हुई "मेरी आशा"॥

विनीत—
"दास"

प्रेमोपहार

श्रीयुत

____

____

____

विनीत—

शिवरामदास गुप्त,

काशी, बनारस।

नाटक के पात्र

पुरुष

भोलानाथ—एक उदार हृदय का जमीन्दार।

प्रेमशंकर—भोलानाथ का मुनीम।

भगवानदास—सरस्वती का पति।

दीनानाथ—लक्ष्मी का पुराना नौकर।

गौरीनाथ—एक स्वार्थी पुरुष।

कालीदास—गौरीनाथ का मित्र।

माधो—गौरीनाथ का दूसरा मित्र।

सोहन—एक पुत्रस्नेही पुरुष।

भोला—सोहन का स्त्री-भक्त पुत्र।

दाया, वायां, कोतवाल, सरकारी वकील, जज वगैरः

स्त्री।

लक्ष्मी—भगवानदास की माता।

सरस्वती—भोलानाथ की पोती।

हीरा—एक कुलत्यागिनी स्त्री।

मुन्नी—आदर्श वेश्या।

सोना—कर्कशा स्त्री।

पड़ोसिनें—

रंगमञ्च

(सबका ईश्वर स्तुति करना)

सब—

ए ए ए ए ए—ए ए ए ए तारो—
अब मेरी नइया भँवर से ॥ तारो०—
आन फँसी मझधार में नइया—
तुमहीं दाता पार लगैया—
डूबत को उबारो—तारो०—
दीनबन्धु दीननाथ—हम अनाथ पकडो हाथ—
करो सनाथ—जगत् नाथ—
"दास" को सम्हारो ॥ तारो०—

(गाते गाते सबका जाना)

सागर का दृश्य—

पानी का धीरे धीरे बहना, बीच-सागर में एक कमल का प्रकट होना और
खिलना—आकाश में 'जीवन' अक्षरों का दिखाव—कमल का फट जाना।
एक छाया-मूर्ति का दृष्टिगोचर होना-दाहनी ओर दूसरे कमलका प्रकट
होना—उसके ऊपर आकाश में 'आशा' अक्षरों का निकलना—
कमलका फटना और एक शान्तभावकी मूर्त्ति का दृष्टिगोचर होना।
जीवन और आशा का एक दूसरे को लालायित नेत्रों से देखना।
बाँई ओर एक कमल का प्रकट होना और खिलना, आकाश में
'निराशा' अक्षरों का दृष्टिगोचर होना। कमल का फटना और
उसमें एक क्रोधयुक्त मूर्ति का दिखाई देना। जीवन,
आशा की ओर लालायित नेत्रों से देखता है, आशा
उसकी ओर बढ कर गले मिलना चाहती है, कि
निराशा हाथ में छुरी लिये आ कर आशा को
मार देती है—आशा की मृत्यु-जीवन को
मूर्च्छा-निराशा का अदृश्य होना।

दृश्य परिवर्तन

टूटा हुआ मकान

[हीरा फटे कपड़े पहने अपने दूधमुँहे बच्चे को छाती से लगाये खड़ी है]

हीरा—सो जा, मेरे लाल ! मेरी आँखों के तारे !! सो जा। बहुत कलपे, पर अब इस दुखिया के पास ऐसी कोई चीज तुम्हें बहलाने के लिये न रही ! उपवासों ने शक्तिहीन बनाया—दुर्दिन ने ठुकरा के इस दशा को पहुँचाया, दुखों ने साथ जोड़ा, सुख-विश्राम ने नाता तोड़ा, अब तो चलने फिरने के योग्य भी न रही। देखो ! ऐ पुरुषों के झूटे प्रेम में फँस जाने वाली बावली बहनो ! मुझे देखो, इस स्त्री को देखो, जो युवावस्था को पहुँचने से पहले ही बूढ़ी हो गई ! काम और लोभ के डाकू आये और मेरी सुख-सम्पत्ति को लूट ले गये।

(गौरीनाथ का आना)

गौरीनाथ—हीरा !

हीरा—कौन गौरी ! तुम आ गये ? क्या यह देखने आये हो, कि मैं किस तरह मरती हूँ ? हाँ, आओ देखो, यह प्राण कैसे इस शरीर को त्यागते हैं। किन्तु मेरी मृत्यु से इस बालक की मृत्यु में तुम्हें अधिक आनन्द मिलेगा। प्रह्लाद को कष्ट पहुँचाते समय उसके पिता को क्या सुख मिलता था—इस बालक में देखो। मैं माता हूँ, कोमल हृदय रखती हूँ—ममता रखती हूँ, पर तुम पिता हो—कठोर हृदय रखते हो, तुम्हें

इसमें सुख प्राप्त होगा, तुम ने बहुत सी अबलाओं को धोखा दिया है। बहुत से बालकों को मार्ग में ठोकर खाने के लिये छोड़ दिया है। अतः आगे बढ़ो और हाथ बढ़ा के इस का गला घोंट दो।

गौरीनाथ—हीरा! यह तू क्या बक रही है?

हीरा—मैं चार दिन से उपवास कर रही हूँ। मैले और फटे कपडे जो मार्ग के भिखारी के कपडों से भी बदतर हैं, पहिने हुई हूँ। बाल सूख कर काँटे हो गये, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गयीं, अब इन नेत्रों में अविराम आँसुओं के सिवा और क्या रह गया है?

गौरी०—फिर तू क्या चाहती है?

हीरा—अपने सतीत्व और प्रेम का बदला।

गौरी०—पर अब उनमें तो कोई भी वस्तु तेरे पास नहीं?

हीरा—हाँ, नहीं है, परन्तु किसने उन पर डाका डाला? कौन उसे लूट ले गया? तू, ऐ सुन्दर नाग! तू। तूने ही मुझे ठगा है, तूने ही मेरा सर्वस्व लूटा है—ला, लौटा दे। मेरी बाल्यावस्था की सम्पत्ति मुझे लौटा दे। हे ईश्वर! और ईश्वर का न्याय! जाग, जाग। इसके अत्याचारों का दण्ड, इसके पाप का प्रतिफल इसे दे।

गौरी०—हीरा! तू निर्धन है, निर्धन की आवाज पर्वत और जंगल की वह पुकार है जो अपना उत्तर अपने आप लौट कर देती है।

हीरा—नहीं, मेरे पास सब कुछ था। धर्म था, लज्जा थी, मान था, मर्यादा थी, यौवन था, तरुणाई थी, मन था

और मन में कामनाएँ थीं। बोल, बोल, ओ लम्पट कामी! जिस समय तू मुझे धोखा दे रहा था, मेरे पास क्या न था? मैं स्त्री थी, मेरे पास सतीत्त्व का भाण्डार था, परन्तु तूने उस भाण्डार को कपट से हर लिया और अब मुझ निस्सहाय को इस टूटे खँडहर में छोड दिया। देख, उपवास ने मेरी छाती के दूध को सुखा दिया है। बालक भूख से तड़प रहा है। क्षुधा मृत्यु बन कर इसके चारों तरफ चक्कर लगा रही है। क्षण मात्र में इसके जीवन का दीपक बुझना चाहता है। डर, डर, मेरे नहीं तो ईश्वर के क्रोध से डर! उसके भय से काँप!

गौरी०—हीरा! मैं तेरे दुखों का बदला धन से चुका सकता हूँ।

हीरा—आह! अब उस तुच्छ और बेकार धन को ले के क्या करूँगी! पापी! मैं तेरे धन को नहीं, तेरे झूटे प्रेम को सच्चा समझ कर तेरे बहकावे में आ गई थी। मैंने तेरे धन-धाम को नहीं देखा। तेरे कपट वाक्जालों को और झूठे प्रेम-पाश को सच्चा जानती थी। जब उस समय धन नहीं मांगा, तो अब क्या लूँगी?

गौरी०—तो फिर क्या तू मुझ से प्रेम चाहती है?

हीरा—प्रेम? वह तेरे पास कहाँ है? विषयी, कामी, लम्पट और पापी से प्रेम घृणा करता है—तू सज्जन के वेष में ठग है।

गौरी०—तू झूटी है, तेरा सर्वस्व मैंने नहीं ठगा है।

हीरा—फिर किसने ठगा है? दुष्ट! मुझे ठगने वाला कौन है?

गौरी०—तू! तेरा स्वार्थी प्रेम।

हीरा—झूट है।

गौरी०—नहीं सच है। झूठी! तूने ही मुझे धोखा दिया है। तेरे सुन्दर रूप को देख कर, कामदेव के बाण से आहत होकर मैं तेरे लिये व्याकुल हुआ। मैंने उस चिंता, उस संकट को दूर करने के लिये तुझसे प्रेम की भिक्षा माँगी। तूने देना स्वीकार कर लिया। मेरी आशा फलवती हुई। अस्तु मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि स्त्री का हृदय मोम का होता है, वह पिघल सकता है और मैं उस पर अधिकार जमा सकता हूँ। अतः इस विचार ने—इस विश्वास ने मुझे एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी स्त्री के पास अपने हृदय में उत्पन्न होने वाली कामनाओं से आनन्द उठाने के लिये भेज दिया। मूर्खे! तूने ही मुझे यह सब सिखलाया-तूने ही मेरी सेवा कर के मुझे बता दिया, कि स्त्रियाँ ठोकर खा कर भी कुत्ते की तरह पाँव चूमने के लिये पैदा की गई हैं। वह जन्म से ही पराधीन हैं और आजन्म पराधीन रहेंगी।

हीरा—तो क्या मैंने तुम्हारी सेवा की, यह बुरा किया?

गौरी०—हाँ।

हीरा—तुमसे प्रेम करना पाप हुआ?

गौरी०—अवश्य।

हीरा—तुम्हारी आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा के समान जानना, यह मूर्खता हुई?

गौरी०—निस्सन्देह।

हीरा—सुन रहे हो, सुन रहे हो, चन्द्र देव! अब तुम्हें पृथ्वी पर उतर आने में क्या देर है? आकाश! जब मनुष्य का धर्म ही छूट गया, तो अब तुम्हारे उलट जाने में क्या देर है? भारत

माता ! तुम अपनी प्यारी सन्तान—अपनी निस्सहाय ललना को किन आँखों से ऐसे दुर्दिन के चक्की में पीसते हुये देख रही हो ? तारागण ! टूट पड़ो और इस पापी को जला कर भस्म कर दो। परमात्मन्! परमात्मन्!! न्याय कर और इसके अङ्ग अङ्ग में कोढ़ हो जाये।

गौरी०—हा! हा!! हा!!! स्वर्ग में परमात्मा सुन रहा है और तू सुना रही है। बावली! स्त्री केवल मनुष्य के स्वार्थ के हेतु पैदा की गई हैं।

हीरा—आह! वह स्त्री जो पुरुष से किसी बात में कम नहीं स्वार्थी, लोभी और कामी मनुष्य के आधीन रहें ? दिखा-आ, दिखाओ, किस इतिहास में हैं, कौनसा वेद बतला रहा है ? कब स्त्रियों को भगवान् ने काम का आखेट बना कर भेजा है ?

गौरी०—रहने दे, रहने दे, मेरे कान इस बकवास को सुनना नहीं चाहते।

हीरा—वह बहरे हैं, तो आँखों से दिल हिला देने वाले इस दृश्य को देख।

गौरी०—वह भी ज्योतिहीन हैं।

हीरा—तो यह क्यों नहीं कहता कि तू अन्धा और गूंगा है।

गौरी०—न मैं अन्धा हूँ और न गूंगा वरन् मेरे नेत्र ऐसे दृश्य से घृणा करते हैं। मेरे कान ऐसे पुकार को उस क़ैदी की पुकार समझते हैं, जो अपने कुकर्मों का फल भोगने के समय ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर दया और क्षमा की भीख माँग रहा हो! जिस प्रकार न्याय करने वाला ऐसे व्यर्थ की पुकार की परवाह

नहीं करता, उसी तरह मैं भी तेरी बातों को निरर्थक और तेरी पुकार को निर्मूल समझता हूँ।

हीरा—क्या तूने मेरा सर्वनाश नहीं किया?

गौरी०—नहीं, तूने स्वयं अपना सर्वनाश किया। शिकारी का काम ही है पक्षी को फँसाना-पुरुष का स्वभाव ही है स्त्री को लुभाना।

हीरा—पापी! काँप, अपने भयानक भविष्य का ध्यान करके काँप! देख, आकाश गिर कर चूर चूर हो जायेगा। सागर सूख जायेगा, पृथ्वी जलामय हो जायेगी। [पुत्र की ओर देख कर] हैं! यह क्या हो गया? इसकी आखें क्यों चढ गई? हे परमात्मन्! हे देव गण! आओ २ मेरे पुत्र को बचाओ। हाय! मैं लुट गई। मेरा सर्वस्व चला गया। हतभागिनी! पकड २, चोर चोरी करके भाग रहा है। इसे पकड़। ठहर पापी! तूने एक सती अबला के दिल को तोडा है—एक सुखमय जीवन को उजाड़ा है—एक गृहणी को मार्ग की भिखारिन बनाया है, ठहर अब कहाँ जाता है? आकाश, पृथ्वी, पाताल तीनों लोक में अब तेरे लिये कहीं स्थान न मिलेगा।

गौरी०—हुश, मेरा हाथ छोड़।

(ढकेल कर चला जाता है)

हीरा—गया, विषैला नाग, पाप का पुतला, अत्याचार का अवतार गया। आह! मैंने धर्म गवाँकर इस रत्न को पाया था। बोल, बोल, ऐ कुल-कलंकिनी के प्राण! बोल, हँस! मेरी छाती टुकडे २ हो रही है। मेरे रोम-रोम से तेरे विरह की वेदना ज्वालामय होकर निकल रही है। हा पुत्र! हा मेरी

आशा ! कहो क्यों मुझसे रूठ गये ? मुझे नहीं मालूम था कि तुम मुझे इतने ही दिनों में त्याग दोगे। हाय ! सूर्य्य के अस्त होते ही कमल ने आँखें मूंद लीं। प्रकाश के मन्द पड़ते ही अन्धकार ने अधिकार जमा लिया। संसार ! मैं लुट गई,—मेरा सर्वस्व छिन गया ! यह मेरे दिल का टुकड़ा है—मेरे हृदय का रत्न है—मेरी आशा है। इसे छाती में रख लूंगी—आँखों में छिपा लूंगी।

(बेहोश होकर गिर पड़ना)

(टेब्लो)

भोला का मकान

(भोला के पिता का बड़बड़ाते हुये आना)

पिता—बेटा ! बेटा ! भाग्य का हेठा, किस का बेटा ? कैसा बेटा ? मूर्ख बजर बट्टू-जोरू का टट्टू-स्त्री का मुख देखते ही हो गया लट्टू। न पिता का भय, न माता का डर, जोरू पाते ही हो गया निडर। पढ़ने के नाम से सर चकराता है, काम के नाम से बुखार आता है। हाय ! हाय !! आजकल के लड़के ऐसे बिगड़ गये कि आज विवाह हुआ और कल से आंखें सेंकने लगे। प्रेम के

दर्पण में जोरू का मुख देखने लगे। निर्लज्जता के पानी में ओला बन कर घुल गये-रूप की चमक से चकाचौंध हो कर बेशर्मी की कीचड में फ़िसल गये। यदि पिता ने कुछ उपदेश किया, तो मुँह तोड़ उत्तर दिया। हाय! हाय!! पिता का यह प्रेम और पुत्र का यह नेम! बस घृणा, हजार बार घृणा! लाख बार घृणा! छीः छीः जिस बेटा के लिये देवी-देवताओं के यहाँ नाक रगडो, साधु-महात्माओं के चरण पकडो, रात-दिन लालन पालन में आंखें फोडो, सेवा-शुश्रूषा में अपनी टागें तोडो, उन की यह करतूत! वाहरे कपूत!! आजकल मेरे पुत्र भोला का भी दमाग़ बिगड गया है—१०५ डिग्री थरमा मेटर चढ गया है। रात-दिन चौबीसों घण्टा जोरू का ग़ुलाम बना रहता है। लाख चिल्लाओ, हज़ार सिर फोडो, पर तनिक भी नहीं सुनता है। मैं उसका बाप था, अब वह मेरा बाप बनता है। या मेरे पिता के पिता! माता के नाना! ऐसे कुपुत्र से बचाना!!!

(पुकारना)

अरी बेटी! सोना!!

(सोना आती है)

सोना—क्या है? फिर वही रोना-धोना। सोना-सोना! क्या टरटर लगायी है? क्यों? बुढौती में यह कैसी झक समायी है?

पिता—(स्वगत) लो श्वशुर के स्वागत का प्रथम अध्याय शुरू हुआ। (प्रगट) पुत्री सोना! वह भोला कहाँ है—भोला?

सोना—मैं क्या जानू कहाँ है? क्या मैं उनकी कोई दासी हूँ या पहरेदार, जो रात-दिन पहरा दिया करूँ—उनकी देख-भाल किया करूँ!

पिता—(स्वगत) नहीं बाबा। तुम दासी कहाँ? मालकिन हो।

सोना—सवेरा हुआ कि कहाँ है? कहाँ गये? क्या करते हैं? मैं क्या जानू कि कहां है और क्या करते हैं?

पिता—घृणा! शत बार घृणा! कोटि बार घृणा! सर चढ़ाने का परिणाम यह है—मुँह लगाने का अंजाम यह है! (प्रकट) अरी बहू! देख, घर में तो सोया नहीं है।

सोना—सोये हों या बैठे, जाकर तुम्हीं बुलाओ। तुम उनके बाप हो वे तुम्हारे बेटे, तुम्हीं जाकर मनाओ।

पिता—अच्छा २ बहू! इतने क्रोध में तो न आओ।

सोना—क्रोध क्यों नहीं? मुझे यह दिन-रात की तानाजनी नहीं भाती, यह बातें नहीं सुहातीं।

(जाना)

पिता—घृणा! शत बार घृणा! सहस्र बार घृणा! लक्ष बार घृणा!!!

शूद्र गवार ढोल पशु नारी।
ये सब ताडन के अधिकारी॥

मूर्ख कपूतो! इतना न बढो कि झुकना पड़े। इतना न ऊँचा हो कि गिरना पड़े। बस, आज से न वह कोई मेरा और न मैं कोई उसका। जिस पिता को पुत्र से कोई लाभ नहीं, आशा नहीं, उसके रहने से न रहना ही अच्छा है। एक माता-पिता वह हैं, जिन्हें अपने लगाये वृक्ष से अच्छा फल मिलता है, परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है जो इसके विपरीत होता है। बस, जा दूर हो। ओ लायक बाप के नालायक बेटे! बस, जा दूर हो।

अब मैं अपना एक पैसा भी तुझे न दूँगा, सब कुछ किसी ब्राह्मण को दान कर दूँगा।

(भोला का आना)

भोला—क्षमा! क्षमा!! पिता जी! मैं नींद में सो गया था, कानों तक आवाज़ नहीं पहुँची। क्षमा कीजिये—इस तरह नाराज़ न हूजिये।

पिता—चल दूर हो—बातें न बना। जा उसी छछुन्दरी के गले का हार हो जा। बूढ़ा बाप चार घण्टे से गला फाड़ २ कर चिल्ला रहा है, पर तेरे कानों तक आवाज़ न गई? दिन-रात चौबीस घण्टे सोये, नींद पूरी न हुई?

भोला—पिता जी! आँखों से भूल हुई।

पिता—आँखों का बच्चा! मनुष्य खेत बोता है अन्न पाता है, सेवा करता है मेवा खाता है, मिहनत करता है लाभ उठाता है, बोल तू मुझे क्या फायदा पहुँचाता है? मैंने तुझे इतने दिनों मर २ कर पाला, बीमारी में देखा-भाला; तेरे लिये अपने आपको मिटा डाला उसका मुझे क्या फल मिला? मेरी सेवा और परिश्रम का क्या पुरस्कार दिया?

भोला—जी जी-जी। मुझे कब इन्कार है? मेरी खोपड़ी का बाल बाल कर्ज़दार है।

पिता—जी का बच्चा! हां का बेटा! नहीं का पुत्र! इस पर कुछ विचार भी करता है? या केवल मुंह से हाँ हाँ करता है।

भोला—पिता जी! बालक हर तरह से तैयार है।

पिता—कब? किस समय? किस प्रकार? मूर्ख-कपटी-

दुष्ट! हृदय था वह रूप का शिकार हुआ। प्रेम था वह जोरू का शृङ्गार हुआ। अब तुझ लम्पट के पास क्या रक्खा है?

भोला—(स्वगत) अररर! बूढ़ा आज जामे से बाहर हो रहा है। (प्रकट) बहुत कुछ, शरीर है, बल है, हाथ हैं पांव हैं, आख हैं, कान हैं।

पिता—झूठा, तू बेईमान है। शरीर था वह आलिंगन में लिपट गया, बल था भोग-विलास में घट गया, हाथ स्पर्श से अपवित्र हो गये, पांव सेवा में घिस गये, आँखें प्रेम में अन्धी और कान मीठी बातों से बहरे हो गये।

भोला—जी जी, पिता जी! हृदय में घाव बड़े गहरे हो गये!

पिता—काठ का उल्लू! मुझे बातों में उड़ाता है? बुढ़ौती में चिढ़ाता है?

भोला—नहीं, नहीं, यह आप क्या कहते हैं? कहिये न मुझसे आप क्या चाहते हैं?

पिता—मूर्ख! गवांर! तू इतना भी नहीं जानता? बालक को माता, पुरुष को स्त्री, और बूढ़े को क्या चाहिये? केवल एक आराम और विश्राम।

भोला—तो आइये, इस मेरे दुपट्टे पर लेट जाइये। (दुपट्टा बिछाना) लीजिये अपनी थकावट मिटाइये। सच है, बुढ़ौती में क्रोध अधिक आता है।

पिता—चल हट, नटखट! मुझे बातों में फुसलाता है। जा मेरे घर से दूर हो जा, मुझे अपना काला मुंह न दिखा। बस, आज से न तू मेरा बेटा, न मैं तेरा बाप।

भोला—अररर ! पिता जी ! इतना बड़ा शाप ! बस, अब मैं कदापि जीवित नहीं रह सकता। यह घृणा और तिरस्कार नहीं सह सकता। बस, अभी छुरी लाकर आपके क्रोध रूपी धधकती अग्नि में अपना शरीर भस्म करता हूँ। (स्वगत) बुद्धि को धोखे के शान पर चढ़ाकर तुम्हारा सर्वस्व हरता हूँ।

(जाना)

पिता—हैं हैं !! क्या सचमुच यह छुरी लेने गया ! क्या मेरे क्रोध से दुःखित होकर अपना प्राण देगा !

(आगे २ भोला का छुरी लिये हुए और पीछे उसकी स्त्री का आना)

भोला—आ, आ, ऐ प्रायश्चित्त की छुरी ! आत्मघातिनी छुरी !! मेरे तप्त हृदय को शान्त कर। एक ही बार में मेरा जीवन समाप्त कर। हाय ! हाय ! पिता को दुःख हो और पुत्र जीता रहे ! बेटे के कारण बाप कष्ट सहे ? नहीं, नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। पिता जी-पिता जी ! यह लीजिये आपका लायक पुत्र, अररर भूला, यह नालायक पुत्र आज संसार से विदा होता है। आपके कारण अपना प्राण खोता है।

सोना—हाय हाय !! मेरा सोने का घर मिट्टी होता है।

पिता—अरे ! यह तो सचमुच आत्म ग्लानि से हत्या कर रहा है। मेरे तनिक से रोष पर अपना प्राण दे रहा है। मेरी आँखों का तारा, बुढ़ौती का सहारा, मेरे लिये अपनी जान खो रहा है।

भोला—चल, ऐ पिता से शापित आत्मा ! इस शरीर से निकल। ऐसे दयालु पिता के शाप से भस्म हो जा, इस छुरी से अपने किये हुए का फल पा।

सोना—स्वामी-स्वामी! जाते जाते एक बार गले तो मिल जाओ।

पिता—अरे ठहर, ठहर! नादान! आत्महत्या न कर।

(छुरी पकड लेता है)

भोला—बस २ हट जाइये, हट जाइये। मुझे स्वर्ग के रास्ते से न हटाइये।

पिता—अरे बच्चे! वास्तव में तू भोला है भोला! पिता की बातों पर ग्लानि करता है। ज्ञान से अज्ञान बनता है।

भोला—नहीं नहीं, मुझे जाने दीजिये, मैं एक भी नहीं मानूँगा! इस छुरी से अपना कलेजा निकालूँगा। आप सदैव रुष्ट होकर यों ही मुझ निरपराधी को क्रोध दिखाते रहेंगे—गालियाँ सुनाते रहेंगे। आज मैं सारा झगडा चुका दूगा—रोज का टटा ही मिटा दूगा।

पिता—अरे! नहीं नहीं, मेरे लाल! मेरे बेटे! तू मेरी इन आंखों का तारा है—मेरा दुलारा है। भला कोई माता-पिता की बातों को बुरा मानता है? आ आ, अब मैं तुझे कुछ न कहूँगा कभी तुझ पर रुष्ट न हूँगा।

भोला—नहीं, होंगे।

पिता—नहीं बेटा, कदापि नहीं।

भोला—तो मैं जो कहूँगा वही कीजियेगा?

पिता—हां हां। मेरे बुढौती का सहारा! जो तू कहेगा वही करूंगा। फेंक इस हत्यारी छुरी को दूर फेंक। आ, मेरे गले से लग जा। बोल क्या कहता है?

भोला—यही, कि अब आपकी टांगें थक गईं—शरीर ने

जवाब दे दिया। अब मुझे सब काम-धाम सौंप दीजिये, आप सुख से घर में बैठ कर विश्राम लीजिये।

पिता—हाँ-हाँ बेटा! यही तो मैं भी चाहता था, कि अब सावधानी से तू काम-काज सँभाल, देना-पावना देख-भाल। इस मेरे क्षणिक जीवन का क्या ठिकाना है? आज नहीं तो कल यहाँ से कूच कर जाना है।

भोला—हाँ हाँ पिता जी! फिर तो यह भोला विना बाप का हो जायेगा—हिसाब किताब भी न समझने पायेगा।

पिता—ले यह ताली-कुञ्जी। हैं! यह मेरा कण्ठ क्यों सूख रहा है?

भोला—(सोना से) अरी! खड़ी खड़ी मुँह क्या देखती है? जा, पिता जी के लिये जल ले आ। (जाना)

पिता—हाँ बेटा! एक गिलास जल शीघ्र मँगा।

भोला—पिता जी! यह बड़ी आलसी स्त्री है, मैं अभी ले आया। (जाना)

पिता—(स्वगत) मेरा पुत्र श्रवण से भी अधिक पितृ-भक्त है—हृदय से मेरी सेवा का अनुरक्त है।

(दोनों का पानी लेकर आना)

सोना—वाह! मैं तो जल लाई थी, तुम क्यों लाये?

भोला—तुमने आने में विलम्ब किया। पिता यहाँ प्यास से चिल्लायें-हम खड़े खड़े मुह देखें और जल भी न ले आयें!

सोना—श्वसुर जी! जल लीजिये।

भोला—पिता जी! जल पीजिये।

सोना—ससुर जी ! यह जल पीजिये।

भोला—नहीं, पिता जी ! यह ग्लास लीजिये।

सोना—नहीं, यह।

भोला—नहीं, यह।

(दोनों का अपना २ ग्लास आगे बढ़ाकर देना)

पिता—अरे भाई ! एक जन जल दो, इस भांति न लड़ो।

सोना—नहीं, ससुर जी ! पहले मेरा जल पीजिये।

भोला—नहीं, पिता जी ! पहिले यह जल ग्रहण कीजिये।

पिता—(स्वगत) अहा ! कैसा पितृभक्त पुत्र और कैसी आज्ञाकारिणी बहू है। (प्रगट) अच्छा—अच्छा पुत्रो ! मैंने जाना कि तुम दोनों का प्रेम अगाध है, मेरी सवा का पूर्णरूप से साध है। अच्छा, मैं भी तुम दोनों का मान रक्खूँगा, थोड़ा थोड़ा दोनों का जल ग्रहण करूँगा। लाओ, दोनों अपना २ गिलास मुझको दो।

(दोनों का गिलास लेकर थोड़ा २ पानी पीना)

लो, गिलास रखते आओ और काग़ज, कलम, दवात लेते आओ। अब मैं तुम्हें सब सौंप कर दान-पत्र लिख दूँगा—अपनी इच्छा पूर्ण करूँगा।

भोला—जो आज्ञा।

पिता—ओह, खड़े खड़े पाँव दुख रहे हैं।

भोला—मुँह क्या देखती है ? पिता के लिये तोशक़ लेआ।

(सोना का आना)

पिता—रहने दे बेटा ! घर में ही चलकर आराम करूँगा।

भोला—नहीं, पिता जी ! यह कैसे हो सकता है ? खड़े २ आपकी

टाँगे दुखे और हम तोशक भी न लायें ? ठहरिये, मैं अभी कुर्सी ले आया।

(जाना)

पिता—भगवान् पुत्र दे तो ऐसा दे ! बाप दे तो मेरे जैसा दे ! दोनों की भक्ति देख कर हृदय गद्गद् हो जाता है—डूबा हुआ प्रेम उतराता है।

(सोना का आना)

सोना—लीजिये, ससुर जी ! इस तोशक पर विश्राम कीजिये।

भोला—(आकर) आइये पिता जी ! इस कुर्सी पर आराम कीजिये।

सोना—हैं ! तुम कुर्सी ले आये !!

भोला—जब तूने तोशक लाने में विलम्ब किया, तो मैं दौड़कर कुर्सी ले आया। हरेक काम में देर लगाती है, जहाँ जाती है वहीं की हो जाती है। पिता जी ! इस कुर्सी पर बैठ जाइये।

सोना—ससुर जी ! कुर्सी का तख्ता गड़ेगा—इस गद्दे पर आसन लगाइये।

भोला—(हाथ पकड़ कर) नहीं पिता जी ! इस पर।

सोना—(हाथ पकड़ कर) नहीं, ससुर जी ! इस पर।

पिता—अच्छा अच्छा, तुम दोनों आपस में न झगड़ो—व्यर्थ न लड़ो। मैं तुम दोनों की इच्छा पूर्ण करूँगा। (कुर्सी पर बैठ कर) कागज़-कलम लाये ?

भोला—हाँ, पिता जी! यह तैयार है।

पिता—लाओ। (दानपत्र लिखता है) लो, इसे सँभालो और आज से सब काम-काज देखो-भालो। परमात्मा करे फूलो फलो! सुखमय जीवन व्यतीत करो! देखो, इस दान-पत्र में देना, पावना, धन-धाम जो कुछ है, वह तीन हिस्सा तुम्हारा है और सोना! एक हिस्सा तुम्हारा है।

भोला—जैसी आपकी आज्ञा। आपके पाँव थक गये हैं, लाइये आपके चरण दबाऊँ।

सोना—तो क्या मैं ससुर की सेवा का फल न उठाऊँ?

(दोनों का पिता का पैर दबाना)

पिता—पुत्रो! तुम दोनों की सेवा-टहल से मैं बड़ा आनन्दित हुआ। अब चलो, हमें भोजन कराओ, फिर सेवा-टहल का लाभ पाओ।

भोला—हाँ-हाँ चलिये—आइये।

(दोनों का जाना)

सोना—(स्वगत) वाहरे चतुराई! अच्छी चाल याद आई। यदि आज इतनी चापलूसी मेरा पति न दिखाता तो यह धन कदापि हाथ न आता। भला, मैं कब दासी की भाँति सेवा-टहल करने वाली! इस बूढ़े के चरण पड़ने वाली! यह सब तो धन अपनाने की युक्ति है—ससुर की नहीं केवल पैसे की भक्ति है।

भोला—(आकर) कहो प्रिये! बूढ़े को कैसा घनचक्कर बनाया? आत्महत्या का भय दिखा कर सारा धन अपनाया।

सोना—हाँ, प्यारे! धोखा तो बड़ा अच्छा दिया। क्षण-मात्र में उधर का धन इधर कर लिया। अब तो मुझे सुन्दर आभूषण बनवा दो—सोने की चम्पाकली गढवा दो।

सोना— गाना

मिला धन का भण्डार, मुख पै चमक मन में उमंग आयेगा।
सोना—मुझे चाँदी का पैंजनी बनाना,
सोने का कंगन दिलाना॥

भोला—तुम भी बनठन के रूप दिखाना।

सोना—अब तो पा गये तुम धन का भंडार।

भोला—बस बस दिल ही में रखना यह हाल॥ मिला०—

(गाते २ दोनों का जाना)

लक्ष्मी का मकान।

(सरस्वती ससुराल आई है, पड़ोसिनें उत्सव में गीत गाती हैं)

सब-- गाना।

सुन्दर रूप सोहाय--सखीरी उत्सव आज मनायँ।
नई नवेली बन अलबेली--सुन्दर साज सजाय।
घायल करती मन को हरती नैनन तीर चलाय॥
घूँघट ओट छिपाय।

चलत चाल मनवाली आली--नागिन सी बल खायँ।
मुख में लाली नैन में काली मधुर २ मुसकाय।
प्रीतम को भरमाय॥

चातक चाहत स्वातिजल, चकई चाहत भोर।
दूल्हन चाहत पिय मिलन, जैसे चन्द चकोर॥
स्वामी के गृह आय॥

१ पडो०--प्यारी बहिन! जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी ज्योति से सारे नभ-मण्डल को शोभित करता है, उसी प्रकार बहन सरस्वती आज अपने सौन्दर्य से इस भवन की शोभा बढ़ा रही हैं। चन्द्र को लजा रही हैं।

सरस्वती--बहिनो! व्यर्थ क्यों अपवाद लगाती हो? तुम

लोग भला सौन्दर्य किसे कहती हो? कौन सी वस्तु को सुन्दरता की उपमा देती हो?

२ पड़ो०—तुम्हारे इन चन्द्र जैसे मुखड़े को, हिरण जैसे नेत्र को, होंठों पर छाये हुये गुलाल को, इन गुलाबी-गुलाबी गाल को।

सर०—यह तुम्हारी भूल है। यह सब तो मिट्टी पर चढ़ाये हुए रंगों के नाम हैं जो बुढ़ापा आते ही धुल जाते हैं, फिर सुन्दरता के गर्व में निद्रित स्त्री के नयन खुल जाते हैं।

२ पड़ो०—तो फिर सुन्दरता किसे कहते हैं?

सर०--स्त्रियों की सुन्दरता उनका सुहाग, स्त्रियों का सौन्दर्य पतिभक्ति, स्त्रियों का ऐश्वर्य उनकी पति-सेवा और स्त्रियों का गौरव उनका पातिव्रत धर्म है।

३ प०--वाह वाह! यह तो पतिप्रेम की बड़ाई है, ये बातें तो वही मानेंगी जो व्याही हैं।

४ प०—तो तू भी एक दिन व्याह कर अपने प्रीतम के घर जायेगी और इन्हीं सुन्दरताओं पर लुभायेगी।

३ प०—नहीं-नहीं, मैं तो कभी भी व्याह नहीं करूँगी-आजीवन स्वतन्त्र रहूँगी।

सर०—लजाती क्यों है? जैसी वसन्त ऋतु की मुँह-बन्द कली खिलने तथा मँहकने के लिये विवश है, वैसी ही एक सुन्दरी के मन में ऐसी उमगों और कामनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

३ प०—परन्तु मैं तो उन पुष्पों की भाँति अपना जीवन

व्यतीत करना चाहती हूँ, जो एकान्त वन में खिलता और अपने आप को देखता हुआ मुर्झा जाता है। न किसी के गले का हार बनता और न बाज़ार बिकने जाता है।

सर०—यह तेरी भूल है। जिस प्रकार ऋतु को गुलाब से, मोती को आब से, रेशम को नरमी से, सूर्य को गरमी से बहार है, उसी प्रकार पुरुष से ही स्त्री का शृङ्गार है।

३ प०—पर मैं तो कहती हूँ कि स्वतन्त्रता में इससे भी अधिक सुखमय जीवन बीत सकता है, बिना किसी आपत्ति के इच्छानुसार आनन्द मिल सकता है।

सर०—नहीं, नारीयोनि में स्वादिष्ट भोजन पाकर, उत्तम वस्त्र पहिन कर, सोने-चाँदी के पलँग पर बैठ कर भी वह स्त्री प्रसन्न नहीं रह सकती, जिसके हृदय में पति-भक्ति न हो। धन-ऐश्वर्य, सम्पत्ति पाकर, सिर से पैर तक आभूषण पहन कर भी वह स्त्री सुखी नहीं रह सकती, जिस पर पति की प्रेम-दृष्टि न हो।

गाना।

पति प्यार बड़ा तिय करमों में। पतिप्यार चढ़ा सब धर्मों में॥
धन्य वही नारी जग में-बस जाय जो पिया के शरणों में॥
पतिदेव देवता तुल्य बनें-नहिं भेद भाव रखना मन में।
बस नारि धर्म का मूल यही-रहे ध्यान लगा पिय चरणों में॥
स्वामी को सर्वस्व जो जानें-ईश्वर से बढ़कर जो मानें—
वे पच नारि बन जाँय सखी, यह तत्व वेद के मर्मों में॥

४ प०—धन्य हो! बहिन सरस्वती! तुम धन्य हो। आज

तुम्हारी पतिभक्ति, पातिव्रत के उपदेश ने हमें कृतार्थ बनाया-हम निद्रित को स्वप्न से जगाया।

भगवान दास--(आकर) और धन्य है वह पुरुष जिसने ऐसी भार्या को पाया ?

३ प०--बहिन ! हम सब जाती हैं--प्रणाम।

(जाना)

भगवान०--प्राण प्रिये ! वर्षाओ, अपने मुखारविन्द से फिर वही अमिय-धारा वर्षाओ। अपनी सखियों को अभी जो उपदेश दे रही थी, मुझे भी सुनाओ।

सर०--नाथ ! मुझ सेविका को इस प्रकार लज्जा के समुद्र में न डुबाइये--चरण की रज को माथे का तिलक न बनाइये। हम और आपको उपदेश सुनायें।

भगवान०--प्रिये ! स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी और देश की शक्ति हैं। इन्हीं की रक्षा से आज मर्यादा हमारी है। ये हमारे हृदय की देवी हैं--हम इनके पुजारी हैं।

सर०--स्वामिन् ! ऐसा न कहिये। आप मेरे सिर के छत्र, मेरे शरीर की आत्मा हैं, मेरे आराध्य देवता और मेरी ध्यान की कोठरी के परमात्मा हैं।

धन्य २ वह नारी जग में धन्य उसका सौभाग है।
गृह-दासी को मन-देवी कहना स्वामी का अनुराग है॥

भग०--प्राणप्रिये ! यह कौन विश्वास कर सकता था कि सूखे वृक्ष में फल फूल आयेंगे ? भगवान दास जो तुम्हारे लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहा था, उसको तुम्हारे दर्शन होंगे।

सर०—नाथ ! मैं आपके मुख से ऐसे प्रेम भरे शब्द सुन कर अपने को अत्यन्त भाग्यशालिनी समझती हूं। प्रभो ! मेरा ध्यान, मेरी चिन्ता, मेरे विचार, मेरी नींद अर्थात् मेरा सब कुछ केवल आप ही हैं।

भग०—प्रिये ! तुम्हारा मुख देखते ही मैं ऐसा चैतन्यहीन हो जाता हूँ, कि मुझे अपने शरीर में आत्मा के होने का ध्यान भी नहीं रहता।

सर०—प्राणनाथ ! आप क्यों मेरी मिथ्या प्रशंसा कर मुझे लज्जित करते हैं ?

भग०—मिथ्या नहीं यह सत्य है। प्रिये ! जिस प्रकार तपस्या में लीन होकर एक ऋषि भूत-भविष्य और वर्त्तमान को समान जान लेता है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे प्रेम में इतना लीन हो गया हूँ, कि मैंने सुख, मान मर्य्यादा के गुप्त भेदों को पा लिया है।

सर०—तो प्रभो ! मुझे भी बतलाइये।

भग०—प्राणप्यारी ! सुनो, सुख मान-मर्य्यादा इन तीनों पदार्थों का भार केवल तुम्हारे प्रसन्न रहने पर है। तुम प्रसन्न-मुख होकर जब मेरे सामने आती हो, तब मेरा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है।

सर०—धन्य भाग्य है उस नारी के जिसके स्वामी इस प्रकार उससे प्रेम करते हों।

गाना।

भग०—प्रेम नगर में बास कर पाये क्या सुख चैन।
तन मन लूटत सहज में प्यारी तोरे बैन॥

सर०—वारी मैं वारी सजन तो पै वारी ॥ हां०—

भग०—नैन तुम्हारे हैं मतवारे, काजल से हथियार संवारे-

सर०—नहिं नाथ से प्यारी, स्वामी पै बलिहारी—

भग०—सुन्दर मुख मनमोह रहा है मानो मद से काम बहा है

सर०—धन्य भाग्य उस नारी के हैं जिसके स्वामी प्रेम पगे हैं

नैना भिक्षुक पद रज के हैं ॥ वारी०—

(गाते हुए सरस्वती का जाना भगवान दास और लक्ष्मी का आना)

लक्ष्मी—पुत्र ! योंही आमोद-प्रमोद में दिन बिताओगे या बहू को कुछ गृहस्थी का काम भी करने दोगे ? दिन भर में यदि क्षण मात्र के लिये भी बहू घर का देख-भाल न करेगी, तो मेरी आंखें बन्द होते ही सब घर मसान हो जायेगा।

भग०—तो वह घर को देखकर क्या कर लेगी ?

लक्ष्मी—क्यों बेटा ! वह नहीं कर लेगी तो और कौन करने आयेगा ? अब यह मेरा नहीं उसी का घर है। उसे हर एक वस्तु का ध्यान रखना चाहिये, गृहस्थी चलाने का ढंग सीखना चाहिये।

भग०—उसे समय नहीं है। वह घर का काम-काज नहीं देख सकती।

लक्ष्मी—पुत्र ! यह तुम क्या कहते हो ? स्त्री के लिये गृहस्थी चलाना-गृहकार्य्य में निपुण होना उसका पहला कर्तव्य है, किन्तु तुम्हें इन बातों की तनिक भी चिन्ता नहीं, ज़रा भी उसके लाभ का ध्यान नहीं ?

भग०—तो क्या चूल्हा फूंकने और रसोई बनाने से ही लाभ है ?

लक्ष्मी—हाँ, नारी-ज़ाति का यह पहला काम है।

भग०—हाँ है, मगर दासियों का काम है। वह दासी नहीं है जो दिन-रात चौका-वर्त्तन करे। वह बड़े घर की लड़की है उसके दादा ने उसे बड़े प्यार से पाला है। वह किसी की लाल आँखे नहीं देख सकती।

लक्ष्मी—पुत्र यह तुम कह रहे हो! बेटा! तुम्हीं बताओ फिर यह गृहस्थी किस प्रकार चलेगी?

भग०—गृहस्थी चलाना चूल्हा फूँकना विद्वान और पढ़ी लिखी स्त्रियों का काम नहीं है।

लक्ष्मी—वत्स! स्त्रियों को सब कुछ सीखना चाहिये।

भग०—पर उसे ऐसे काम काज सीखने की जरूरत ही क्या है? तुम अपना काम-काज सँभालो, जिस तरह पहले चलाती थी, चलाओ। क्या मर गई हो?

लक्ष्मी—बेटा! अभी नहीं मर गई हूँ, पर एक दिन मर ही जाऊँगी। तब तुम्हीं बतलाओ उस वक्त कैसे काम चलेगा, कौन कार्य्य करेगा?

भग०—जब समय आयेगा देखा जायेगा। मैं बहू व्याह कर लाया हूँ, तुम्हारे लिये दासी नहीं खरीद कर लाया। मेरी सुकोमल स्त्री से यह सब झंझट न होगा।

लक्ष्मी—अच्छा, तो मैं ही गृहस्थी की देख-भाल करूँगी। तू अपनी बहू को बिठाये रख! गुड़िया की तरह उसे शृङ्गार-पटार कर आले में सजाये रख।

भग०—नहीं नहीं अब वह यहाँ नहीं रह सकती। मैं अच्छी तरह समझ गया, तुम उससे बैर ठानती हो-उसकी देख-भाल के बदले उस पर हुकूमत चलाती हो।

लक्ष्मी—अच्छा बेटा, तुम इतने नाराज न हो। मैं अब उससे कोई काम न लूँगी। भूल से भी उसे किसी काम को न कहूँगी।

भग०—चाहे तुम काम लो या न लो, पर अब वह दिहात में रहना ही नहीं चाहती—वह अपने घर चली जायेगी।

लक्ष्मी—और यह दूसरे का घर है? पर वह क्यों जायेगी, मैं ही चली जाऊँगी। बूढ़े माता-पिता को बहू लाने से पहले संसार त्याग कर देना चाहिये। वत्स! मैं तुम्हारी माता हूँ-सदैव तुम माता से प्रेम करते आये हो फिर आज यह बूढी जिसके सर्वस्व केवल तुम्हीं हो, जब वह मृत्यु की मुख का ग्रास बन रही है, घड़ियाँ जोह रही हैं उसे छोडकर गैर हुए जाते हो। एक पराई लडकी के कारण उसे अपनी जगह से हटाते हो? भगवान्! आज यह भी दिन देखना पडा कि पराई लडकी आकर मुझे मेरी जगह से हटा रही है! प्रभो! क्या इसी दिन के लिये इस ममता—स्नेह को दिया था, कि बहू की बदौलत पुत्र की लाल लाल आँखें देखूं? पुत्र बस अधिक नहीं, केवल मेरी काशीयात्रा का प्रबन्ध कर दो।

भग०—अच्छा कल भेज दूँगा। मुझे नहीं मालूम था, कि तुम मेरी अर्द्धांगिनी को इस प्रकार लाल आँखें दिखाओगी। तुम्हें शर्म नहीं आती।

लक्ष्मी—हाँ, बेटा! मैंने बडी भूल की—मेरा अपराध क्षमा कर! मुझें इसी में सुख है कि तू अपनी स्त्री को लेकर सुखसे गृहस्थी में रह-मैं तुझे आनन्द में ही देखकर सुखी हूँगी। आह! आज मैंने समझा, कि स्त्री, माता से भी बढ कर होती है।

भग०—बस, मुह सम्भाल कर बात करो। मेरे सामने उसे कोसती हो—अभिशाप देती हो! (दीनानाथ का आना)

दीना०—भगवान दास ! चुप रहो, तुम माता के साथ ऐसे शब्दों का व्यवहार कर रहे हो ? उनको प्रति उत्तर दे रहे हो ? चिल्लू भर पानी में डूब मरो, तुमको धिक्कार है। वह माता जिसने अपने हाथों से खिला-पिला कर तुम्हें इतना बड़ा किया उसका यह अपमान ? निकलो, दूर हो।

भग०—कौन निकले ?

दीना०—तुम।

भग०—कहाँ से ?

दीना०—इस घर से।

भग०—यह घर किसका है ? मेरे पिता का—मेरे पूर्वजों का।

दीना०—पिता का अवश्य है, परन्तु ओ निर्लज्ज, तू माता का अपमान करके पिता के घर पर अधिकार जमा रहा है ? जो पुत्र माता-पिता की सेवा करना, उनके आज्ञानुसार चलना अपना धर्म नहीं समझता, वह उनके घर पर अधिकार जमाने का क्या हक़ रख सकता है ?

भग०—ओहो ! अब कुत्ते भी मालिक से गुर्राने लगे—हमारे टुकड़ों से पल कर हम को ही आँखें दिखाने लगे !

दीना०—हाँ, उन्हीं टुकड़ों का ध्यान आ जाता है, तो जिह्वा पर आई बात रुक जाती है। उन्हीं टुकड़ों का ख्याल कर के मुख पर आये हुए शब्द वापस लौट जाते हैं। वही रक्त वही मास, वही यह शरीर है जो इनके टुकड़ों मे पला हुआ है। बोलो, फिर किन आँखों ने इनका अपमान देख सकता हूँ ? किन कानों से इनके लिये बुरे शब्द सुन सकता हूँ ? भगवान दास ! आज तुम अपने आप को बड़ा समझते हो - मुझको टुकड़खोर और कुत्ता बताते हो। याद करो, जब तुम एक

माँस के टुकड़े के समान थे, तब मैंने और इस बेचारी बुढ़िया माँ ने तुम्हें पालपोस कर इस काबिल बनाया, कि तुम हम को आज गालियाँ दो। धिक्कार है तुम पर और तुम्हारे इस विचार पर!

लक्ष्मी—नहीं २ दीनानाथ ! अभी वह बच्चा है। मैं कैसे उस पर क्रोध कर सकती हूँ ! मैं माँ हूँ— माता का शरीर ममता का बना होता है। उसका जीवन स्नेह से ढला होता है। बेटा ! तुम्हारी स्त्री मेरे घर की राजरानी है। मेरे कुल की शोभा है। अब मैं उसे एक शब्द भी न कहूँगी। उसकी दासी बनी रहूँगी। केवल तू मुझे प्यार की दृष्टि से देख—दुलार के साथ "माता" कह कर पुकार और मुझ से नाराज़ न हो।

दीना०—दुःखी माताओ ! क्या तुम अन्धी हो जाती हो जो बालक का लालन-पालन करने के समय उसके परिणाम पर ध्यान नहीं रखती ? पुत्र किसे कहते हैं ? उस ज़हरीले नाग को जिसके विष का मंत्र नहीं। उसे, जो क्षण भर में तोते की तरह आँखें बदल लेता है !

लक्ष्मी—बेटा ! चार दिन के बाद यह बोलने वाला पक्षी उड़ जायेगा—खाली पिंजड़ा रह जायेगा। उस दिन तुम भी मुझे भूल जाना। फिर मैं भी तुम्हें देखने न आऊँगी। पुत्र ! अब जितने दिन और जी रही हूँ अपने स्नेह में जीने दो। आ, आ, मेरे हृदय के कमल ! मेरी आशा का प्यार ! आ। मैं तेरे चरण पड़ती हूँ।

(पैरों पर गिरती है)

दीना०—हैं ! माता ! यह आप क्या करती हो ? पुत्र के पैरों पर माथा टेकती हो ! पृथ्वी उलट जायेगी, सूर्य्य आकाश से टूट पड़ेगा। भगवान दास ! चुपचाप खड़े देख

रहे हो ? बढो और अपने अविरल आँसुओं से माता के चरण को धो दो। अपने कुकर्मों के लिये उनसे क्षमा मागोः—

शीघ्र ही आकाश में आग मढ़ जाने को है।
शान्त सागर में प्रलय तूफान आने को है॥
टूट पडेगा नभ मण्डल माता के इस अपमान पर।
फट पडेगा वज्र आकर इस दुर्विनीत सन्तान पर॥

सर०—माता ! माता !! यह क्या कर रही हो ? सर्वनाश हो जायेगा। क्षमा करो। उनके बदले मैं तुमसे क्षमा की भीख मांगती हूँ। हम अज्ञान हैं—आप के बच्चे हैं। मैंने अपने मैके में काम-काज करना नहीं सीखा था—अब तुम सिखाओ—मैं सीख कर सब करूँगी। क्षमा ! क्षमा !! (चरण पकडती हैं)

लक्ष्मी—उठो पुत्री ! उठो। यदि क्रोध में मैंने तुम्हें कुछ कहा हो, तो उसे भूल जाओ। मैं तो बूढी हो गई हूँ—बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। अतः मेरी बातों का बुरा न मानना बेटी !

दीना०—हायरे। माता की ममता, न जाने ईश्वर ने इस जाति का हृदय किस वस्तु से बनाया है, कि जिसमें पुत्र-स्नेह का समुद्र उमड पडता है। आओ, कुपूत पुत्रो ! इसमें स्नान करो, इसका पान कर पवित्र हो और इसको माथे चढ़ा कर कृतार्थ हो जाओ।

भगवान०—माता ! माता !!

लक्ष्मी—मेरा पुत्र, मेरा सर्वस्व ! (गले मिलते हैं)

टेब्ला।

भोलानाथ का मकान

(भोलानाथ का बैठे दिखाई देना)

भोला०—दयामय ! यह तुम्हारा कैसा विचित्र नियम है कि एक को दुःख दिये बिना दूसरे को सुखी नहीं करते ? एक की सम्पत्ति लूटे बिना दूसरे को दान नहीं कर सकते ! जिस सन्तान की उत्पत्ति और लालन-पालन में विश्रान्ति नींद, आनन्द सब कुछ भुला दिये जाते हैं, वही सन्तान क्षण मात्र में अपनी इच्छा और प्रसन्न मन से दूसरों को दे डाली जाती हैं। संसार ! तेरी गति निराली है ! तेरा नियम अद्भुत् है ! जिस धन को पैदा किया, रक्षा किया। हृदय में छिपा कर रखा वही आज दूसरों के लिये निछावर कर देना पडा। घोर कष्ट सह कर उसका उपार्जन किया, परन्तु स्वयं उससे कोई लाभ न उठा कर दूसरों को आनन्द पहुंचाया ! आह, यही दशा आज कन्याओं की है, जिनके भरण-पोषण में अपने को मिटा दिया जाता है, परन्तु जहाँ वह बडी हो गई, तो दूसरों का घर सुधारने और उनको आराम पहुंचाने के लिये भेज दी जाती हैं। अपनी प्राण पुतली को पराये घर की दासी और दूसरे के द्वार की भिखारिनी बना देना पडता है ! हाय ! मेरा हृदय शून्य करके चली गई और अब तक न लौटी !!

(सरस्वती का आना)

सर०—दादा ! मैं आगई।

भोला०—आगई ! अहाहा !! चारो तरफ कैसा सुखमय दीख पडता है। कल भी इस घर में दीपक जल रहा था, परन्तु चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार था। आज दीपक भी नहीं है, पर यही घर जगमगा रहा है। परन्तु नहीं मैं मूर्ख हूँ—मोह में अन्धा हो रहा हूँ। जिस प्रकार इन्द्र-धनुष रंग बिरंगे वस्त्र पहन कर सन्ध्या काल के समय धोखा देकर छिप जाता है उसी प्रकार यह कन्या फिर थोडी देर में चली जायेगी और मैं दिन में दीपक जला कर भी इस घर के अन्धेरे को दूर न कर सकूँगा।

सर०—नहीं, दादा ! अब मैं कभी आपके पास से न जाऊँगी।

भोला०—पुत्री ! यह कैसे हो सकता है ? क्या तेरा पति तुझे यहाँ रहने देगा ?

सर०—हाँ, दादा ! उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है और वे स्वयं भी यहाँ ही रहा करेंगे।

(प्रेमशंकर का आना)

भोला०—क्यों प्रेमशंकर ?

प्रेम०—शिवदयाल जी आये हैं।

भोला०—आने दो। (प्रेम शंकर का जाना) जाओ पुत्री ! तुम अन्दर जाओ। आओ, शिवदयाल जी ! पधारो। (शिवदयाल का आना) कहिये, क्या आज्ञा है ? सेवक के घर इस समय कैसे पधारे ?

शिव०—भोलानाथ जी ! मुझे चार हज़ार रुपयों की आव-

श्यकता है। मैं अपनी कन्या का विवाह करने वाला हूं। लड़की सयानी हो चली है अतः अब उसका घर वर ठीक कर देने के लिये रुपयों की बड़ी ज़रूरत आ पड़ी है।

भोला०—अच्छा २ अधीर न हों। आप कन्या का विवाह प्रसन्नता से करें। प्रेमशंकर! इन महाशय को चार हज़ार रुपये दे दो। यह अपनी पुत्री का लग्न करने वाले हैं।

प्रेम०—लिखा-पढ़ी के लिये आप तमस्सुक लाये हैं?

भोला०—तमस्सुक की क्या आवश्यकता है? भले आदमी हैं—इनकी बात ही तमस्सुक है।

प्रेम०—श्रीमान्! आप हरएक का विश्वास कर लेते हैं, कुछ भी ऊँचा नीचा नहीं विचारते हैं।

भोला०—क्या कहा? विश्वास न करूँ? उस मनुष्य का जो ईश्वर की सृष्टि में है? पृथ्वी पर भगवान का एक अंश है-सब गुणों का आगार है. विश्वास न करूँ!! जिस रूप में देवादि भगवान के अवतार की कल्पना करते हैं, उसका अ-विश्वास करूँ? वह मनुष्य जो समाज का शासक, सभ्यता का पुत्र, धर्म का स्थापक, और स्नेह की मूर्ति है, उस मनुष्य का विश्वास न करूँ? यह क्या कहते हो प्रेमशंकर? फिर तुम्हीं बताओ, क्या पशु का विश्वास करूँ?

प्रेम०—संसार में बहुत से मनुष्य पशुओं से भी अधम हैं। जो अपने भाइयों पर अत्याचार के बादल बरसा के उनका सर्वनाश करते हैं। माता को धक्के देके, पिता को लात मार के घर से बाहर निकाल देते हैं और परिवार वालों को तो रसा-तल पहुँचाते हैं।

भोला०—चुप रहो, प्रेमशंकर! चुप रहो। मनुष्य की निन्दा न करो। यह भले आदमी हैं, मेरे भाई हैं, मेरा धन इनका ही धन है। इससे बढ़ कर भारत के लिये और क्या गौरव की बात हो सकती है, कि एक भाई के पास रहता हुआ धन समय पड़ने पर दूसरे के काम आये। जाओ, इन्हें रुपये दे डालो।

प्रेम०—जो आज्ञा।

शिव०—धन्य है, भोलानाथ जी! आपके ऐसे पवित्र विचार को धन्य है!

(दोनों का जाना, फिर प्रेमशंकर का लौट आना)

भोला०—आह, क्षुद्र प्राणी! तू किस विचार में है? तेरा किधर ध्यान है? तू सब से श्रेष्ठ होने पर भी अपने भाइयों को नीच जानता है—मनुष्ययोनि से पैदा हुए एक शरीर, एक आत्मा रखने वाले को तुच्छ समझता है? एक भारत माता की गोद में पले हुए अपने दीन और दरिद्र भाई को घृणा से देखता है? प्रेमशंकर! तू उदास क्यों है?

प्रेम०—कुछ नहीं स्वामी! धन आपका है, आप चाहें इसे लुटा दें या सँभाल के रखें। मैं आपके हाथों पला हूँ, आपका नमक खाया है अतः जब आपका भयानक भविष्य मेरी आंखों के सामने आता है, तो मेरा मन घबराता—हाथ पांव थर्राता है। आप लोगों को दया और प्रेम में पड़ कर बिना समझे बूझे मुक्त हाथ से ऋण देते हैं, परन्तु लेने वाले तो ज़रा भी चुकाने की चिन्ता नहीं करते।

भोला०—प्रेमशंकर! जिस प्राणी में दया और प्रेम नहीं—जो परोपकार से रहित है, वह जीता हुआ भी निर्जीव है। मैं लोगों

को ऋण नहीं, किन्तु दान देता हूँ और दान दी हुई वस्तु लेने की आशा से नहीं दी जाती।

प्रेम०—श्रीमन्! दान? दान देकर भला आपने आज तक क्या लाभ उठाया? आपके दिल में यह ख्याल कैसा समाया? देखिये, गौरीनाथ ने लेन-देन का व्यापार करके ज़मीदारी बढा ली और आपने दान करके कहिये क्या खरीद लिया?

भोला०—हाँ, उन्होंने जमीन अवश्य खरीदी है, परन्तु मैंने भी धन देकर कुछ न कुछ मोल ही लिया है।

प्रेम०—आपने क्या मोल लिया? मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

भोला०—प्रेमशंकर! मैंने कीर्ति जैसी अमर वस्तु को इस जगत् के तुच्छ धन से बदल लिया—कंकड़ देकर स्वर्ण को मोल लिया।

प्रेम०—श्रीमन्! कीर्ति एक हवा का झोंका है, नदियों का बहाव है, फूलों की सुगन्धि है जो इधर से आई उधर गई। परन्तु ज़मीदारी सँभाल कर चलाने से दिन दूनी रात चौगुनी बढती है, यह वह लता है जो प्रत्यक्ष फल देती है।

भोला०—नहीं नहीं, प्रेम! तुम भूलते हो, यह वह वस्तु है जिसे न वायु का तूफान उड़ा सकता, न नदी की धारा बहा सकती और न अग्नि भस्म कर सकती है।

(गौरीनाथ का आना)

गौरी०—श्रीमान् भोलानाथ जी घर में हैं?

भोला०—कौन है? भाई!

गौरी०—मैं हूँ, गौरीनाथ।

भोला०—आइये, गौरीनाथ जी! कहिये क्या आज्ञा है?

गौरी०—भोलानाथ जी! इस समय मुझे अचानक एक आवश्यकता आ पड़ी है, जिससे मैं लाचार होकर आप के पास आया हूँ।

भोला०—कहिये, कहिये, निःसकोच कहिये।

गौरी०—और कुछ नहीं केवल पाँच हज़ार की बड़ी ही जरूरत है। यदि आप कृपा करके मुझे इस समय दे दें, तो मेरा बहुत बड़ा काम हो जाये।

भोला०—हाँ हाँ, क्यों नहीं दे दूँगा। भैया! जब तक मेरे पास है मैं किसी को नाहीं न करूँगा। वह मनुष्य ही क्या है जो समय पर दूसरे के काम न आये? धन पैदा करने का दूसरा नाम यही खर्च करना है।

गौरी०—मैं आप को विश्वास दिलाने के लिये लिखा पढ़ी कर देने को तैयार हूँ।

भोला०—गौरीनाथ! लिखा-पढ़ी की उसे आवश्यकता होती है जो विश्वास न करता हो, या इन रुपयों को पाने की आशा न रखता हो। गौरीनाथ! विश्वास के सहारे आज ससार चल रहा है, विश्वास में स्वर्ग और अविश्वास में नरक है। यदि विश्वास न हो तो रसोई बनाने वाला ब्राह्मण भोजन में विष मिला सकता है। नौकर पीछे से आकर छुरी मार सकता है। अत. जब इन सब का विश्वास करता हूँ तो क्या आपका विश्वास न करूँगा? नहीं नहीं, आप भूल से भी ऐसा ध्यान न लायें। प्रेमशंकर! आप को रुपये दे दो।

प्रेम०—चलिये, गौरीनाथ जी! बैठक में चलिये, मैं अभी आता हूँ।

(गौरीनाथ का जाना)

भोला०—कहो, प्रेमशकर! फिर कुछ कहना चाहते हो?

प्रेम०—श्रीमन्! क्या आपको मालूम है कि गौरीनाथ आपसे रुपये क्यों ले रहे हैं?

भोला०—क्यों ले रहे हैं, यह मालूम करने की मुझे ज़रूरत ही क्या है? उनको कोई आवश्यकता आ पड़ी होगी—ले रहे हैं। जब तक विशेष ज़रूरत नहीं आती तब तक किसी के आगे कोई हाथ नहीं फैलाता है।

प्रेम०—नहीं, वह आपके रुपयों से ही आपकी जायदाद खरीदना चाहता है—जो कि कल नीलाम होने वाली है।

भोला०—नहीं, प्रेमशकर! तुम्हारा मन तुम्हें धोखा दे रहा है। वास्तव में यह पापमय जगत् धोखे की टट्टी है और इसकी हर एक वस्तु मिटनेवाली है। जब चौबीस घण्टे साथ रहने वाले दाँत, मुख का साथ छोड़ देते हैं, बल शरीर को त्याग देता है, आयु जन्म का सम्बन्ध तोड देती है, तब भला फिर कौन किसका साथ देता और कौन विश्वास के योग्य है? यह धन मनुष्य के शरीर की छाया है, जब तक धूप रहेगी, यह पीछे-पीछे फिरेगी और सूर्य के अस्त होते ही इसका पता तक न लगेगा। विश्वास न करने से हम भी विश्वासघाती, चोर और अधर्मी समझे जायँगे। इसलिये व्यर्थ समय न गँवाओ, जाओ और रुपये दे डालो।

(प्रेमशंकर का जाना। भोलानाथ का दूसरी ओर जाना)

गौरीनाथ का मकान

(गौरीनाथ का रुपयों की थैली लिये आना।)

गौरी०—आ आ, ऐ मेरी आशा! आशा की कामनायें !! कामनाओं के वांञ्छित फल !!! आ, मेरे हृदय से आलिंगन कर। यह तेरा दास, द्वेष का भक्त, ईर्ष्या का पुजारी, गौरी तेरे लिये बहुत दिनों से लालायित था। आज छल, कपट कौशल रूपी शस्त्रों ने मुझे सहायता पहुँचाई, भाग्य ने पलटा खाया और तू जीता जागता मेरे पास आया। सत्य है, लोहे को लोहे से काटना चाहिये, तुझ स्वरूपवान, प्रकाशवान, सुखदायक को अपनाने से प्रथम मोह, ममता, और दया को त्याग देना चाहिये। आज तेरे ही पराक्रम, तेरी ही शक्ति पर मूर्ख भोला-नाथ परोपकार का पुतला, उदारता का अवतार बना है। तेरी ही कृपा से एक ग्राम का वासी, एक स्थान का निवासी होकर हम पर हुकूमत कर रहा है। मान, सम्मान के गर्व में फूला हुआ है। अपने आपको भूला हुआ है। चल, ऐ रुपहली छाया! अब मेरा साथ दे—मेरे गले मिल और मेरे गृह में विराजमान हो। यद्यपि तेरे आवाहन में सब मुझे बेईमान कहेंगे, परन्तु वे मूर्ख हैं—अज्ञानी हैं। कौन है वह जो इस संसार रूपी चौसर पर अपने कपट का पासा नहीं फेंकता? कौन है वह? जो दूसरे को परास्त करने के लिये धोखे की गोट से कुटिलता की

चाल नहीं चलता ? बस, यदि बेईमान हैं तो सब, अन्यथा कोई नहीं। धोखेबाज़ हैं तो सब, अन्यथा कोई नहीं।

(माधो और कालीदास का आना)

काली०—कोई नहीं, मित्र गौरीनाथ ! कोई नहीं।

माधो—चालबाज़ हैं तो सब, अन्यथा कोई नहीं।

गौरी०—ओहो मित्र ! कालीदास ! मित्र माधो !!

का० मा०—हाँ वही तुम्हारे दुःख के साथी—तुम्हारे शरीर के रक्त और तुम्हारे पसीने पर रक्त बहाने वाले मित्र !

गौरी०—आओ आओ, मित्रों पधारो।

काली०—मित्र गौरीनाथ ! तुम्हें बेईमान कौन कह सकता है ? इस प्रपञ्चमय संसार में हर एक बड़ा अपने छोटे को दबा रहा है, हर एक सबल निर्बल पर विजय पा रहा है। पराक्रमी शक्ति से, पदाधिकारी आज्ञा से, राजा संग्राम से, धनी धन से, पंडित तर्क से, न्यायी क़लम से और डाकू हत्या से, निर्बल पर विजय पाता है। जो सफल हुआ, वह योग्य, ज्ञानवान् और जो असफल हुआ वह महामूर्ख कहलाता है।

माधो—विजय का पुत्र राजा होता और पराजय का दास भिक्षुक बन जाता है।

गौरी०—सत्य है मित्रो ! तुम्हारा कहना यथार्थ है। आज तुम्हारे ही बतलाये हुए मार्ग का पथिक बन कर इस स्वर्गदा श्वेतवर्ण का दर्शन पाया। अब शीघ्र उस कण्टकमय पथ को साफ करना चाहिये—उस खटकते हुये काँटे का सर्वनाश करना चाहिये।

काली०—मित्र गौरीनाथ ! अब तो गई हुई बाज़ी भी अपने
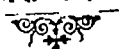
हाथ है। हर एक चाल पर मेरी जीत और भोलानाथ की मात है। बस, शीघ्र नीलाम पर चढ़े हुए उसकी जायदाद को इन्हीं रुपयों से खरीद कर उसे नीचा दिखाओ और स्वयं ज़मीदार बन जाओ।

माधो—परन्तु ऐसा दाँव फेंकना चाहिए, कि अपनी कौडी चित आये। नीलामी इश्तिहार जारी भी न हो और जायदाद नीलाम हो जाये।

काली०—हाँ हाँ, नीलाम की सूचना भोलानाथ को मिलने भी न पाये और सब अपना हो जाये।

गौरी०—वाह वाह! मित्र कालीदास! इस सुधरे ज़माने में तुम सा मित्र मिलना दुर्लभ ही नहीं वर असम्भव है।

काली०—परन्तु भाई! अब केवल शब्दों के सत्कार से काम नहीं चलने का, मस्तिष्क को शक्तिशाली बनाने के लिये लाल शर्बत मँगाना चाहिये।

माधो—हाँ, भाई! नेक काम में विलम्ब नहीं लगाना चाहिये। परमात्मा ने जब आप रूप दर्शन दिया है तो इस सत् कार्य में हाथ बँटाना चाहिये।

गौरी०—तो मुझे कब इनकार है? गौरीनाथ तो इसके लिये पहले से ही तैयार है।

काली०—क्यों नहीं? क्यों नहीं? मित्रता के यही माने हैं। भारतवर्ष के सच्चे मित्र यही हैं। परन्तु भाई! केवल लाल-शर्बत से ही नहीं काम चल सकता है। जब तक उस लाल-देवी के सिंहासन रूपी गिलास को कोई सुन्दर पुजारिन

हिंडोला-झुलाने वाली न हो तब तक हमारे थर्मामेटर का पारा कैसे चढ़ सकता है?

माधो—मित्र कालीदास! सोची तो तुमने बड़ी दूर की। क्योंकि मित्र गौरीनाथ तो पारा के चढ़ते ही अपनी प्यारी हीरा को गले का हार बनायेंगे और हम दोनों उल्लू लटकते ही रह जायेंगे।

काली०—अबे, ए उल्लू तू, मैं क्यों होने लगा?

माधो—भाई! जिह्वा लड़खड़ा गई—क्षमा करना।

गौरी०—भाई कालीदास! कदाचित् तुम्हें यह मालूम नहीं कि मैंने उस अपवित्र स्त्री को कब का अपने ठोकर का निशाना बना दिया है। उस चुड़ैल को लात मार कर घर से निकाल दिया है।

काली०—क्यों-क्यों? वह तो आपकी प्रेमिका थी। आप के ऊपर अपना सर्वस्व निछावर करती थी।

गौरी०—मित्र! कैसी प्रेमिका? और कैसा प्रेम? कंगाल किसका भाई और दरिद्रता किसकी स्त्री? जिस प्रकार बिना सुगन्ध का पुष्प, बिना महक का इत्र किसी के चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकता, उसी प्रकार बिना रूप और यौवन की स्त्री को मनुष्य गले का हार नहीं बना सकता।

माधो—ठीक, बहुत ठीक। सड़ी मिठाई को मनुष्य क्या पशु भी नहीं पसन्द करता।

काली०—और आपका जन्मा हुआ एक पुत्र भी तो था?

गौरी०—(हँस कर) ह ह ह ह!! अजी, ऐसे ऐसे कितने पुत्र पड़े हैं—जहाँ दान दिया जायेगा वहाँ धर्मशाला बन जायगा।

माधो—बहुत ठीक! परमात्मा बनाये रक्खे ऐसे दानी

को ! ये स्त्रियाँ तो मनुष्य के मनोरञ्जन की सामग्री हैं। जब पुराने वस्त्र और पुराने गृह को लोग त्याग देते हैं, तो हम इनका रोग क्यों पाले ? जिस दूकान पर अच्छी मिठाई देखी वहीं जल-पान किया।

काली०—तो अभी कुछ लासा लगा रक्खा है या एकदम त्याग दिया ?

गौरी०—अजी, उस चमगीदड़ी का परित्याग किया और एक नवीन हसिनो को हृदय में स्थान दिया।

माधो—वाह वाह !! यह तो बहुत अच्छा किया। अच्छा तो अब उसी हसिनी का दर्शन कराइये—विलम्ब न लगाइये।

काली०—हाँ, भाई ! तब तो उस सुन्दरता के क्षेत्र में मुझे भी सैर कराइये, परन्तु उस हसिनी का नाम ?

गौरी०—मुन्नी जान।

काली०—कौन वही मुन्नी वेश्या ? जो आजकल यहाँ के रईसों की नाक हो रही है ?

गौरी०—जी हाँ।

काली०—जब तो भाई ! उसे शीघ्र बुलावो।

गौरी०—परन्तु मैं तो उसे यहाँ बुलाने के विरुद्ध हूँ।

माधो—कारण ?

गौरी०—कारण कि मैंने तो उसे हृदय में स्थान दिया है, पर जब मैं भी उसकी आँखों में समा जाऊँ, तो अधिक पाँव फैलाऊँ।

काली०—और भाई ! मुझे भी एक बात नई याद आई।

गौरी०—वह क्या ?

कालो०—यही कि दोष भी करना तो गुण के साथ। यदि वह यहाँ आयेगी, तो चार मुहल्ले वाले दृष्टिपात करेंगे—हमें रण्डीवाज कहेंगे।

माधो—और यदि हम उसके यहां चलेंगे?

काली०—फिर कौन देखता है? इधर उधर से दृष्टि बचाई और कोठे पर पहुँच गये। सम्भवतः यदि कोई संमुख आ भी पड़ा तो रूमाल से मुंह छिपा कर गली में घुस गये।

माधो—वाह! वाह!! बड़ी अच्छी युक्ति बताई! सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। रंडीवाज भी न कहलाएँ और आनन्द भी लूटें!

काली०—अजी! यह तो एक साधारण बात है। बड़े २ साड़ी दुशाले वाले तो आधी रात को उनके यहां जाते हैं और भोर होने के प्रथम चोरों की भांति मुख छिपाये अपने घर लौट आते हैं।

माधो—अच्छा, तो अब बातों में समय न गंवाना चाहिये-अपनी गाड़ी को आगे बढ़ाना चाहिये।

काली०—परन्तु खाली खाली यहां से चलना तो अच्छा नहीं मालूम होता है।

गौरी०—अजी! चलिये, मार्ग में सब प्रवन्ध हो जायगा, एक ही साथ दोनों काम बन जायगा।

माधो—हां, चलिये २।

काली०—चाँदी के जूते से सिर कुचलने के लिये शीघ्र चलिये।

(सब का जाना)

मुन्नी का मकान

(एक ओर से उस्तादजी और दूसरी ओर से गौरी वगैरह का आना)

दायाँ—आइये २ सरकार ! सेवक अगवानी के लिये हाथ फैलाये है।

बायाँ—और दास भी आँखें बिछाये है।

गौरी०—कहो उस्तादजी ! आज आकाश में अन्धेरा क्यों छाया है ? वह दूज की चाँदनी किस ओट में है ?

दायाँ—सरकार ! बिना तारागण के चाँद भी शोभा नहीं पाता है। दोनों के मिलन और उदय से ही आकाश जगमगाता है।

बायाँ—जब तारागण उदय हुए हैं, तो चाँद भी निकलेगा।

काली०—देखो, उस्तादी की बातें न समझाओ, इस घर का चाँद कहाँ है, उसे बुलाओ।

दायाँ—भला हुज़ूर, आप से और उस्तादी ? आपही रईसों से आज यह भारत का निर्जन गृह जगमगा रहा है—दिनों दिन उन्नति दिखा रहा है।

बायाँ—नहीं तो एक ही बर्सात में यह संगीत का बाज़ार बह जाता।

दायाँ—अजी! यही तो भारत के शुभचिंतक और इन घरानों के जन्मदाता हैं।

बायाँ—बहुत ठीक, बहुत ठीक। सत्ययुग के दानी और कलियुग के विधाता हैं।

काली०—लो, बाई जी भी पधारी।

(मुन्नी का आना)

मुन्नी—बन्दगी! बाबू साहब! आप तो दूज के चांद हो गये।

माधो—अजी, इन्हें दूज का समझिये या पूर्णिमा का। परन्तु यह तो बतलाइये कि आज आप मलिन क्यों हैं? यह आपका मुख कमल मुर्झाया क्यों है?

मुन्नी—कुछ नहीं, सर में दर्द हो रहा है।

काली०—कब से?

माधो—जब से हम लोग आये तब से।

मुन्नी—नहीं, आज कई दिन से चित चञ्चल हो रहा है।

माधो—क्यों २ किस कारण यह हाल है?

दायाँ—(स्वगत) केवल पैसा ठगने की चाल है।

बायाँ—(स्वगत) धोखा देने का जाल है।

गौरी०—कामिनि! हृदयेश्वरि! तुम्हारे मलिन मुख ने मुझे चिन्ता में डाल दिया। बताओ, तुम्हें आरोग्य करने के लिये किस डाक्टर को बुलाऊँ?

काली०—बडे अस्पताल के सिविल्-सर्जन् को।

मुन्नी—जी नहीं! आप की मिहरबानी।

गौरी०—नहीं २, सूखी मिहरबानी से प्रेम नहीं, धोखा समझा जाता है। मुझे कोई सेवा बताइये।

माधो—सेवा यही कि आप रुपया विछाइये और उस्ताद जी! आप 'गिद्-गिन-धा' की आवाज सुनाइये।

काली०—यदि आप चाहें तो हमारे इस कष्ट उठा कर आने को व्यर्थ न करें। अपने कोमल कंठ से मेरे हृदय की व्यथा हरें।

बायाँ—हाँ, बेटा! बाबू लोगों की इच्छा पूर्ण करो—कोई फड़कती हुई चीज शुरू करो।

मुन्नो—जैसी आज्ञा।

गाना।

दिर दिर तुम ना, दिर २ तुम ना, देरे ना तदारे दानी।
ता तुम तनन तनन तदारे दानी॥ दिर०—
ढीठ लँगर मोरी छाडो डगरिया।
मानो कहा नहीं फोडो गगरिया॥
पइया पडत तोरी विनती करत हूँ—
जाने दो 'दास' को अपनी नगरिया॥ दिर० —

गौरी०—प्रिये! मदमाती सुन्दरी! तेरे अनूपम सौन्दर्य से विमोहित होकर मैं सब कुछ भूल गया—तेरे कोकिल-कण्ठ को लजाने वाले गले ने मुझे बेसुध बना दिया।

माधो—वाह वा! वाहवा!! क्या गाया मानों आकाश में बिजली चमकी और लुप्त हो गई! हां, एकाध फड़कती हुई चीज और हो जाये।

दायां—बेटी! बाबू लोगों की आज्ञा मानो, कोई चीज़ और सुना दो।

गौरी०—इस उडते हुए पक्षी जैसे दिल को अपने हृदय रूपी पिजडे में फँसा लो।

मुन्नी—

गाना।

बहारे दुनियाँ है चन्द रोजा न चल यहाँ सर उठा उठा कर।
क़ज़ा ने ऐसे हज़ार नक्शे विगाड डाले बना बना कर॥
गुरूरे हुस्न आफरीं से हरदम दिमाग़ जिसका था आसमाँ पर।
मिटाया नामों निशाँ तक उनका फनाने ठोकर लगा २ कर॥
कहाँ है दारा कहाँ सिकन्दर कहाँ है जम और कहाँ फरेदूँ।
ज़मी के पैवन्द सभी हुए हैं जहाँ पे सिक्का बिठा बिठा कर॥

माधो—वाहवा! वाहवा!!

गौरी०—प्यारी मुन्नी! तू ने आज एक तृषित आत्मा को कर्ण द्वारा अमृत-रस पिला कर अपना लिया। आ-आ, मेरे हृदय से आलिंगन कर मुझे उत्साहित बना।

मुन्नी—बस कीजिये, ज्यादा हाथ-पांव न फैलाइये। कुछ कल के लिये भी रहने दीजिये।

गौरी०—क्यों-क्यों? क्या मेरे प्रेम को मिथ्या माना? मुझे कोई आवारा या लुच्चा जाना? प्रेममयी! तुम्हारे संगीत के एक एक शब्द ने मेरे हृदय-तन्त्री को जगा दिया, मेरे रोम २ को अपना दास बना लिया।

मुन्नी—महाशय! प्रेम किसे कहते हैं? किस चिडिये का नाम है? मैं नहीं जानती।

माधो—सत्य है, तुम लोग तो पैसे से प्रेम करती और पैसे को अपना सर्वस्व मानती हो।

गौरी०—लो, लो, यह इनाम लो, अप्रसन्न न हो। चन्द्र-वदनी! यह तन-मन-धन सब कुछ तुम्हारा है—यह जान तुम्हारी है—शरीर तुम्हारा है। लो, उस्तादजो! तुम लोग भी इनाम लो, जाओ खाओ-पीओ आनन्द मनाओ।

दायाँ—परमात्मा सरकार की बढ़ती करें! दिन दूना, रात चौगुना भरे!

बायाँ—चलो भाई! दायाँ! कुछ सरकार के नाम पर फूकें तापें, अब यहाँ से एक-दो-तीन रास्ता नापें। (दोनों का जाना)

गौरी०—प्यारी मुन्नी! क्या विचार रही हो? आओ, इस हृदय मन्दिर में विराजमान होकर इस प्रेम के पुजारी को पूजा करने दो। कुछ दिनों से भटकते हुए प्रेमी भँवरे को अपने हृदय-कमल में छिपालो। लो, यह रुपये की थैली लो।

मुन्नी—रहने दीजिये बाबू साहब! ये चाँदी के चमक-दमक किसी दूसरे के लिये रहने दीजिये। मुझे इसकी जरूरत नहीं।

गौरी०—तो क्या मेरी आज्ञा का उल्लंघन होगा?

मुन्नी—मजबूरी। मैं उन वेश्याओं में नहीं हूँ, जो धन के लिये अपने धर्म का नाश करती हैं—पैसे के लोभ में अपने सत् की चादर को कलंकित करती हैं।

गौरी०—ओहो! अजी सत की देवी! मैंने ऐसी सैकड़ों चादरें देखी हैं—ए ढकोसले और ही किसी को दिखाना। क्या यहां मैं बैठ कर केवल गाना सुनने आया हूँ?

माधो—या यह कोई उपासना-मन्दिर है, जो आंखें मूँद कर ध्यान लगाने आये हैं?

काली०—बाई जी! आये हैं तो आनन्द उठाने के लिये।

कुछ पीयेंगे-खायेंगे, लगी को बुझायेंगे। लो यह थैली उठाओ अधिक न रूठो।

(हाथ पकड़ना चाहना)

मुन्नी—खबरदार! मुझे हाथ न लगाना। मैं ऐसी थैली को ठोकर मारती हूँ।

माधो—ओहो! वेश्या! और इतना गर्व? कहाँ कीचड़ कहाँ कमल? कहाँ टूटा मकान कहाँ राजमहल!!

गौरी०—मुन्नी! तुम जानती हो कि मैं कौन हूँ?

मुन्नी—हाँ, मैं जानती हूँ। आप शहर के रईस हैं—चौधरी हैं—गांव के ज़मीदार हैं। धर्म के नाशक, पाप के घर और पातकी अवतार हैं।

काली०—हैं! एक वेश्या और रईसों से घृणा करना। ज़ात रंडी की और पाक साफ़ बनना!

गौरी०—मुन्नी! मुन्नी!! पानी में रह कर मगर से वैर न ठान। तू वेश्या है अपनी ज़ात को पहचान।

मुन्नी—जिसकी माता वेश्या और पिता वेश्यागामी हो, फिर वह वेश्या न होगी तो क्या स्वर्ग की देवी होगी? तो भी मैं वेश्या नहीं हूँ।

काली०—वेश्या नहीं है तो क्या सती सीता है?

मुन्नी—अस्वीकार तो नहीं कर सकती, पर यद्यपि मैं वेश्या हूँ—वेश्या के गृह में पली हूँ पर मेरा कर्म-धर्म मुझे वही शिक्षा देता है जो आज तुम्हारे घर में बैठने वाली एक स्त्री रखती है। आज वही अधिकार, वही कर्त्तव्य मेरा भी है जो एक पुरुष की धर्मपत्नी रखती है।

गौरी०—ओहो! वेश्या भी धर्मपत्नी कहलाये? स्वार्थ के रेगिस्तान में धर्म की पवित्र धारा बहाये! असम्भव!!

मुन्नी—कदापि नहीं। जब पृथ्वी के उदर में जल, समुद्र में वडवानल और पहाड़ों पर वृक्षों की सृष्टि हो सकती है, तो वेश्या के हृदय में भी पवित्रता रह सकती है।

काली०—ओहो यह तो एक पतिव्रता वेश्या है!!

गौरी०—मुन्नो! पतिव्रता का उपदेश न सुना—सावधान हो। एक नीच गामिनी वेश्या होकर अपने को धर्मपत्नी का मान न दे।

मुन्नी—क्यों? किस कारण? आज जो आँख, कान, होंठ गाल तुम्हारी धर्मपत्नी में है—वही मुझमें भी है। जो सौन्दर्य लावण्य तुम्हारी स्त्री में है—वही मुझमें भी है। केवल एक पर रह कर धर्म पालन करना—एक ही के साथ जीना मरना नारी-धर्म को धर्मपत्नी-पतिव्रता का मान देता है। और एक के विपरीत चलना धिक्कार के योग्य बना देता है। आज उसी गुण, उसी सत्व की रक्षा जिस नारी से हो, वह स्त्री के रूप में देवी है।

गौरी०—तो तुझे भी पर्दे में रह कर एक की हो जाना चाहिये। गाने-बजाने को त्याग देना चाहिये।

मुन्नी—कभी नहीं, व्यवसाय चाहे छोटा हो या बड़ा उसमें लज्जा कैसी! जिस तरह संसार में हरेक मनुष्य एक एक व्यवसाय से जीवन-निर्वाह करता है, उसी प्रकार हम गन्धर्व जाति में गाने-बजाने का व्यवसाय चलता है। इस संगीत को बुरी इच्छा से सुन कर मोहित तुम्हारे ऐसे कामान्ध होते हैं—अन्यथा इससे तो परमात्मा प्राप्त होते हैं।

गौरी०—मुन्नी! पृथ्वी की धूल होकर आकाश पर न जा—अपनी जाति को पहचान! तू नहीं तो तेरी सैकड़ों बहनें आज गली-गली रूप की दूकान पर धर्म का सौदा बेंच कर पेट पालती हैं। आज एक को तो कल दूसरे को अपना पति मानती हैं। क्या वे भी धर्मपत्नी ही हैं?

मुन्नी—यह उनका नहीं, तुम्हारा दोष है। ऐ पत्नी के गर्व में गर्वित होने वाले मनुष्य! वे भी कल तेरे जैसे किसी दूसरे मनुष्य की बहन, कन्या और स्त्री रही होंगी। परन्तु उनको नीच प्रवृत्ति की ओर खींचने वाले, पाप के समुद्र में डुबाने वाले तू और तेरे भाई हैं। उन रूपवती सुकोमल बालिकाओं को तेरे जैसे पापी अपने प्रेम में फांस कर उनका सर्वनाश करते हैं। पुष्प का सुगन्ध ले लेने के पश्चात्, उन्हें अपने पैरों से कुचल देते हैं।

गौरी०—ओहो! इस रूप पर इतना गर्व? इतना मान? जिस रूप को कौड़ियों के मूल्य बेंचना वेश्यावृत्ति है, उस पर यह अभिमान?

मुन्नी—कारण यह ईश्वर का दिया हुआ एक श्रेष्ठ दान है। स्त्री के रूप पर संसार का सारा सौन्दर्य आकर सिर झुकाता है, स्त्री के रूप के आगे इन्द्रधनुष भी लजाता है। स्त्री का रूप देखकर संगीत बज उठता, ज्ञान पागल हो जाता और भक्ति घुँटने टेक कर प्रणाम करती है। क्या उस रूप उस लावण्य को पुरुष गन्दे भाव से छू सकता है?—अपनी लालसा का ग्रास बना सकता है?

गौरी०—ओ अपवित्र हड्डी! निकृष्ट ग्रास! क्या वह यही रूप

है? जिसे नीच भंगी—चमार ने जूठा कर छोड़ा है—जिस हड्डी को सैकड़ों कामी कुत्तों ने निचोड़ा है—उसी पर तू इतना अभिमान दिखाये? पाँव की धूलि होकर माथे का चन्दन बनने जाये?

मुन्नी—ऐ स्वार्थ की प्रतिमा! पातक की मूर्त्ति! शर्म कर और ज़रा विचार। आज तू भी उसी जूठे ग्रास को, उसी अपवित्र हड्डी को पाने के लिये गिड़गिड़ा रहा है! उसी गन्दे टुकड़े को जिसे तू घृणा के योग्य बतारहा है, अपनाने के लिये भिक्षुक की तरह मेरे आगे हाथ फैला रहा है। बोल! धिक्कार के योग्य तू है या मैं? घृणा का पात्र तू है या मैं?

गौरी०—छीः! छीः!! यह मैंने क्या कह डाला?

(हीरा का आना)

हीरा—(आकर) यह, ऐ नारी धर्म की जीवित मूर्त्ति! घृणा के योग्य तू नहीं यह।

गौरी०—(स्वगत) हैं! यह कम्बख्त कहाँ से आ गई।

हीरा—बहन! स्त्री के रूप में कितना छिपा हुआ बल है—स्त्री के धर्म में कितनी शक्ति है, आज तूने इस विलासी कामी को अच्छी तरह समझा दिया। सत्य—प्रेम और प्रेम शब्द का मर्म इसे भली भाँति बतला दिया।

माधो—हैं! यह कौन बला?

गौरी०—हीरा! हीरा!! तू यहाँ क्यों आई?

हीरा—सूर्यास्त होने के प्रथम छाया, शरीर को नहीं त्याग सकती। मैं तेरी जिह्वा से फिर वही मिथ्या प्रेम के शब्द

सुनने के लिये आई हूँ। तेरे वही कपट-नेत्र और छली पुतलियों को देखने आई हूँ।

देखने आई हूँ अब भी तेरी आँखें हैं वही।
है जवानी अब वही उसकी बातें हैं वही॥
लूट कर सतपन को मेरे अब ये पापाचार है।
प्रेम, लम्पट अब तुझे करने का क्या अधिकार है॥

गौरी०—बिना मेरी आज्ञा ? यह निर्भयता !!

हीरा—घबरा नहीं, मैं तेरी पिछली बातें न प्रकट करूँगी। जब बीता समय नहीं लौट सकता—खोया हुआ रत्न नहीं मिल सकता तो उसकी याद बेकार है। बिछा बिछा अपने मिथ्या प्रेम का जाल बिछा, छल-कपट द्वारा इस रमणी का भी सर्वस्व नाश कर डाल।

मुन्नी—बहन ! तुम कौन हो ? यह कैसी बातें कर रही हो ?

हीरा—मैं कौन हूँ-यह इस निर्दयी से पूछो। इस सुनहले साँप से पूछो। मेरी दुःख गाथा सुन कर संगीत थम जायेगा—प्रकाश अन्धकार में मुँह छिपायेगा। हँसी आर्त्तनाद करेगी।

गौरी०—देख, होश में आ। मुख सँभाल। मेरे क्रोध का ध्यान कर।

माधो—मालूम होता है यह पागल है।

गौरी०—बिल्कुल पागल है।

हीरा—हाँ मैं पागल हूँ और तू भी पागल है। ओ मुर्दे की दुर्गन्ध ! श्मशान की चिता ! पाप के अवतार ! अपने कर्म को देख; अपने कुव्यवहार को देख; मेरे प्रेम को देख और अपने अत्याचार को देख !

गौरी०—माधो! माधो!'

हीरा—न घबरा—धैर्य धर! मैं तेरी बातें न कहूँगी। अन्यथा तेरी पाप-कथा सुन कर भाई भाई के मुख की ओर न देखेगा। स्त्री स्वामी से घृणा करेगी—संतान अपनी माता के दूध में विष का सन्देह करेगी।

मुन्नी—बहन! पृथ्वी स्त्री है, हम दोनों की जन्मदायिनी भी स्त्री हैं। अतः स्त्रियों में यह भेद-भाव क्यों? हमसे सकोच क्यों?

हीरा—तुम्हारा कहना सत्य है। देखो! इस निर्दयी से बचो! इस अन्यायी से भागो। इसने, मुझ निर्दोष को, जिसने अपना तन-मन-धन सब इसके ऊपर निछावर कर दिया था—ठुकरा कर मिट्टी में मिलाया है। इसने, जन्मदाता को त्यागने वाली मुझ अभागिन को गली-गली की भिखारिन बनाया है। मैंने तन से इस की सेवा, मन से इसका सुमिरन, हृदय से इसका ध्यान करना ही अपना धर्म जाना—इसके प्रेम में निमग्न रहना अपना कर्त्तव्य माना परन्तु:—

दया आई इसे कुछ भी न ठुकराते हुए मन को।
जलाकर राख कर डाला मेरे विकसित कुसुम वन को॥
ढहतीं हुई जवानी में अरमान ढह पड़े।
प्रेम के जो फूल थे वह शूल हो पड़े॥

मुन्नी—ओह! यह अत्याचार!!

गौरी०—मूर्खे! यह उद्दण्डता! क्या तेरी मृत्यु तुझे यहाँ खींच लायी?

हीरा—न घबरा—शान्त रह। तू पुरुष है, कठोर हृदय

रखता है। अत्याचार तेरा कर्त्तव्य, अन्याय तेरा कर्म और अनुयोग तेरा रूप है। देख! निर्दोष अबला की पुकार खाली न जायेगी। इस निरपराधिनी की आह से पृथ्वी हिल जायेगी। यह शोभित भवन चिता की भाँति जल उठेगा, सुगन्धित पवन दुर्गन्ध उगलने लगेगा।

गौरी०—माधो! इस मूर्खा की गर्दन में हाथ देकर बाहर कर दो।

हीरा—हाँ-हाँ बाहर कर दे, किन्तु बाहर करने के पहले मेरे शब्दों को सुन ले। घोर अन्धकार छाया है, वायु वेग से चल रही है, मेरे अंग थर्रा रहे हैं। परन्तु ओ अधर्मी! तेरा हृदय जरा भी नहीं पसीजता; तू तनिक भी भय से विचलित नहीं होता। देख उस काल-रात्रि का ध्यान कर, जब एक निर्दोष अबला बाल खोले फटे और दुर्गन्ध भरे कपड़े से शरीर ढाँके अपने कलेजे का टुकड़ा, जिसको तूने निकाल कर फेंक दिया था, तेरे कठोर हृदय को मोम करने के लिये दिखला रही थी, उसका ध्यान कर।

गौरी०—दुष्टे! पापिनि! निकल दूर हो।

हीरा—मार डाल—मार डाल। ओ डाकू! लुटेरे। मेरा सर्वस्व तो तूने लूट लिया, अब मुझे भी मार डाल। परन्तु उसके भय से काँप—दुखिया के शाप से डर।

गौरी०—चाण्डालिन! मुझे शाप का भय दिखाती है?

(छूरी मारना चाहता है)

मुन्नी—बस, सावधान!

गौरी०—मुन्नी! हट जा—मेरे सामने से हट जा।

कालीο—अररर ! यहाँ तो रक्त-पात होना चाहता है ।

माधो—हाँ भाई ! रंग में भग का सामान होना चाहता है।

मुन्नी—अन्यायी ! पुरुष होकर एक अबला पर हाथ उठाता है—ज़रा भी नहीं लजाता है ?

गौरी०—मुन्नी मुन्नी ! मेरे क्रोध रूपी चक्की के बीच न आ, मेरे मार्ग से हट जा। अन्यथा गेहूँ की तरह पीस जायेगी, इसके साथ तू भी मिट जायेगी ।

मुन्नी—दूर हो, कापुरुष । तू मुझे क्या डर दिखाता है ! तेरे जैसे कायर कापुरुष से मेरा हृदय भयभीत नहीं हो सकता।

गौरी०—देख ! तू एक भिखारिन का पक्ष लेकर अपनी मृत्यु बुला रही है ।

मुन्नी—भिखारिन नहीं—वह सती नारी है। तू लम्पट, कामी, व्यभिचारी है ।

हीरा—लज्जा कर, शर्म कर। ओ पाप के पुतले ! कलंक की कालिमा लज्जा कर !!!

गौरी० —दुष्टा-चुड़ैल ! ले अपने किये का फल पा।

(छुरी मारने चाहना)

मुन्नी—(कमर से पिस्तौल निकाल कर) बस, वहीं ठहर जा ।

काली०—मित्र ! अभी पुलिस ले आया (जाना)

माधो—मित्र ! मैं भी शस्त्र लेकर आया । (जाना)

टेब्ला ।

सोना का मकान।

(सोना का गाते हुए आना)

सोना— गाना

नैना लगायेंगे अपने पिया प्यारे से।
नैना मिलायेंगे जी गरवा लगायेंगे ॥ अपने पिया०—
रूप मेरा आला, यौवन मेरा वाला—
अपने पिया प्रीतम को दिल में छिपायेंगे ॥ अपने पिया०—
मुझसी भोली का है भोला वो प्यारा प्रीतम ॥
सौ में है लाख में एक वो न्यारा प्रीतम।
अब आँख मार प्रीतम से नैना लगायेंगे ॥ अपने पिया०—

"जिसको पिया चाहे वही सोहागिन नार।" जैसी मैं सुन्दर रूपवती भोली-भाली, वैसाही मिला आज्ञाकारी भर्त्तार। बैठने कहूँ तो बैठता है, उठने कहूँ तो उठता है—बेचारा आठों पहर सेवा में हाथ बाँधे खड़ा रहता है। तनिक अप्रसन्न होने पर चरण पड़ता और गिड़गिड़ाता है। आठ आठ धार आँसू बहाता है। यद्यपि इस आव भगत से मुहल्ले वाले उन्हें जोरू का गुलाम कहते हैं, पर मेरे पति इस बात की ज़रा भी पर्वाह नहीं करते हैं। परन्तु क्या करूँ? वह बूढा खूंसट मेरे इस प्रेम को देख देख कर जलता है, मुझ पर दिन-रात क्रोध की वर्षा करता है। पानी

पिलाओ, विस्तरा विछाओ, चिलम भर लाओ, सारांश यह कि हर समय एक न एक हुकूमत लगाये रहता है। मेरा शृङ्गार-पटार देख कर जलता है, भुनता है।

भोला—(आकर) अरे! जलता है तो जलने दो, तुम क्यों चिंता करती हो? किस लिये दवती हो?

सोना—तो क्या लाठी चलाऊँ? अपनी जान गवाऊँ? नहीं नहीं मुझसे यह रोज का झगडा सहा नहीं जायेगा, बार बार झल्लाना, आँखें दिखाना, यह नहीं देखा जायेगा।

भोला—अच्छा, मैं उन्हें समझा दूँगा—अब से उन्हें मना कर दूँगा।

सोना—चाहे तुम समझाओ या मनाओ, पर मैं तो इस घर में कदापि न रहूँगी। तुम्हारे सर की सौगन्ध आज स दाना-पानी भी न करूँगी।

भोला—अरे-अरे! प्यारी!! क़सम क्यों खाती हो? क्यों अपने हृदय को दुःखी बनाती हो? मैं अभी कपड़ा उतार कर आता हूँ और उस वूढे को ठीक करता हूँ।

(जाना भोला का)

सोना—बात करना छल से, संसार चलाना कौशल से। जो स्त्रियाँ इस मन्त्र का जप करती हैं, वे सदैव आनन्द में रहती हैं और जो इसके विपरीत चलती हैं वे ससुराल में लाखों कष्ट सहती हैं। आज यदि मैं अपने पति के बहकाने में आ जाती तो रोज रोज का यह झगड लगा रहता। न हँसी-खुशी में दिन कटता, न सुख से जीवन बीतता। बस,

अब मनमाना आनन्द उठाऊँगी—अपनी युक्ति से इस बूढ़े को निकलवाऊँगी।

गाना

चंचल छबीली नुकीली मैं नारी—
    बातों की युक्ती से काम चलाऊँ ॥ चञ्चल०—
नैना मिला कर, प्यार दिखाकर—
    अपने इशारे पर पति को नचाऊँ ॥ चञ्चल०—
भोली भोली मोरी बात है—
    पिया से घात है—
कभी क्रोध दिखाय कभी हँस के लुभाय—
छल बल से कौशल से काम बनाऊँ ॥ चंचल०—

(सोना का गाते हुए जाना, पिता का आना)

पिता—घृणा! हजार बार घृणा! लाख बार घृणा! अपनी भूल किस से कहें गदहा खाया खेत! जिस दिन से पुत्र भोला को अपने धन धाम का मालिक बनाया, उस दिन से तो उसकी स्त्री का मिज़ाज ही बढ़ गया। 'जस थोरे धन खल बौराई' की भाँति एकदम पलट गया। बात बात में लड़ने आती है, सेवा शुश्रूषा के बदले मुझसे पानी भराती है। भोजन माँगने पर काली का रूप धरती है—मुझ बूढ़े बकरे पर सिंहनी बनकर झपटती है। या कर्त्तार! तू ही लगा बेड़ा पार!

(सोना का आना)

सोना—हैं! तुम अभी तक यहीं खड़े हो—बैल की तरह अड़े हो! क्यों पानी भर कर ले आये?

पिता—वहू ! पानी भरते भरते तो यह वूढा थक गया, मरने को अँटक गया। अब क्षमा कर। जा एकाध घडा तू ही ले आ।

सोना—मैं और पानी भर लाऊँ ? तुम्हें वैठे वैठे खिलाऊँ ? दिन रात वैठे वैठे वैल की तरह ढाई सेर खाते हो दो घड़े पानी भरने में थके जाते हो ?

पिता—वेटी ! वुढौती की मार वुरी होती है। जव तुझ पर पडेगी तो तू भी यही कहेगी।

सोना—देखो ! खवरदार !! अपना कोसना मुझे न सुनाना। तुम और तुम्हारी वुढौती जाये चूल्हे में—क्या यहाँ हराम का भोजन रक्खा है जो वैठे वैठे खाओगे, न कुछ करोगे न कमाओगे ?

पिता—वहू ! क्यों मुझ वूढे को गालियाँ देती हो ? यह सब मेरी ही कमाई है, मेरी वदौलत तू भी आई है।

सोना—चलो चलो यह टर टर किसी दूसरे को सुनाओ। जव मेरे पति ने परिश्रम किया, तव घर द्वार का मालिक हुआ।

पिता—सत्य है। अच्छा वावा ! इस वूढे पर दया करो, मैं थक गया हूँ लो एक घड़ा पानी तुम्हीं रख लो।

(घडा देने चलता है सोना झटक कर पटक देती है)

सोना—क्या मैं तेरी टहलुई हूँ या दासी, जो आठों पहर घर का काम करूँ तेरा भडा भरूँ ? चण्डाल मरता भी नहीं, कि घर का कूडा हटे जाये, रोज रोज का खट खट तो मिट जाये !

(भोला का आना)

भोला—क्यों-क्यों ? यह कैसी धड़ाके की आवाज़ है ? यह क्या बात है ?

सोना—(रोकर) देखो जी, यह तुम्हारा बूढ़ा बाप मुझे गालियाँ सुनाता है! मेरे सर पर घड़ा पटक दिया—मेरा हाथ झटक दिया। (रोना)

भोला—क्यों जी बूढ़े! तुम्हें शर्म नहीं आती! तुम्हारी बुढ़ौती में बुद्धि सठिया गई! क्या सचमुच तुम्हारी शामत आ गई?

पिता—बेटा भोला! पिता के प्रति ऐसा वचन मुख से न निकाल। पहले मेरा अपराध पर विचार ले तो कुछ कह।

भोला—मैं तुम्हें भली भाँति पहचानता हूँ। तुम्हारे कारण यह रोज का टंटा है—इसे अच्छी तरह जानता हूँ। बस, भल-मनसाहत इसी में है कि अभी इस घर से निकल जाओ—अपना छकड़ा आगे बढ़ाओ।

पिता—भोलानाथ! यह तू क्या कहता है? मैंने तो यही कहा कि मैं थक गया हूँ मुझसे पानी भरा नहीं जाता। बस, इतनी बात में बहू ने लाखों बातें सुनाई—त्योरी चढ़ाई और मुझी को अपराधी ठहराया।

सोना—झूठ—सब झूठ है। नहीं, अब मैं इस बूढ़े के साथ एक क्षण भी रहना नहीं चाहती। यदि तुम्हें रहना है तो मुझे जवाब दे दो, मुझे मेरे माता-पिता के घर पहुँचा दो।

भोला—यह झूठी और तुम सच्चे? बस, यहाँ से निकल जाओ।

पिता—बेटा! ऐसा कहते हुए ज़रा तो लजाओ। यों रूप पर पतङ्ग होकर जोरू का गुलाम न बन जाओ।

भोला—बस, बस एक शब्द भी आगे न बोलो—यहाँ से क़दम उठाओ और अभी घर के बाहर हो जाओ।

पिता—बेटा! पिता का अपमान करना महापाप है, इस अपराध का प्रायश्चित्त नहीं, केवल नरक-धाम है। देख! अपनी भूल पर पछतायेगा।

भोला—ऊँह देखा जायेगा। जब बाप ने धर्म छोड़ कर बहू पर हाथ उठाया तो बेटे ने भी बाप से मुख फिराया।

पिता—एक तुच्छ स्त्री के कारण पिता का तिरस्कार! क्या यही है मेरे प्रेम का पुरस्कार?

भोला—अजी! जैसी करनी वैसी भरनी! चलो, प्रिये! घर में चलो, न रहेगा बाँस न बाजेगी बाँसुरी।

सोना—परन्तु देखना, फिर यह बुड्ढा घर में न आये—मेरे द्वार पर अपनी सूरत न दिखाये।

भोला—नहीं, प्रिये! कदापि नहीं। एक बार डहकाये तो बावन वीर कहाये। चलो, अन्दर चलो, अपना द्वार बन्द कर लो।

(दोनों का अन्दर जाना)

पिता—घृणा! हाय हाय! "करनी किया तो नहिं डरा पाछे क्यों पछितायँ? पेड लगाया बबूर का तो आम कहाँ से खायँ?"—जिस शरीर के टुकडे को कल तक व्हाइट—रोज—साबुन से धो धो कर स्वच्छ किया, वह त्रिया-चरित्र से मिट्टी में मिल गया। इतने दिनों से जिस गृह को रच रच कर बनाया, वह रूप की वर्षा में ढह गया। सुन्दरता के भिखारी और कटाक्ष की आखेट ने आज पिता को घर से बाहर कर दिया। धिक्कार है उस पिता को जिसने ऐसे पुत्र को उत्पन्न किया। अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसके आगे हाथ फैलाऊँ? चलूँ मित्र माधो से सहायता लूँ।

गाना

निज पिता धर्म को भूल गये भारत सन्तान इस कलियुग में।
धन देख गर्व में फूल गये भारत सन्तान इस कलियुग में॥
वो पुत्र पिता का प्रेम गया वो पितृ-भक्ति का नेम गया।
बन नारि भक्त, प्रतिकूल हुए भारत सन्तान इस कलियुग में॥
जहँ पिता स्नेह का ध्यान रहा, वहँ नारी मोह का ज्ञान हुआ।
तज लाज नारी अनुकूल हुये भारत सन्तान इस कलियुग में॥

(गाते २ जाना)

लक्ष्मी का मकान

(लक्ष्मी मृत्यु शैया पर पड़ी है, दीनानाथ पास बैठा है)

लक्ष्मी—परीक्षा करने से प्रतीत होता है, कि मनुष्य का जीवन दर्पण के समान है। जिसके द्वारा मनुष्य अपना जीवन-चरित्र देख सकता है, कि उसका आने वाला जन्म कैसा होगा और उसका पूर्व जन्म कैसा था? जिस प्रकार चन्द्र पर पृथ्वी की छाया पड जाने से चन्द्रग्रहण होता है, वैसे ही मनुष्य पर दुःख पड जाने से उसके हृदय का गुप्त भेद प्रकट हो जाता है। संसार स्वर्ग है—यदि उसमें दुःख न हो। यह इन्द्र-लोक है यदि शत्रुता का लेश न हो। घृणा के योग्य ऐ तुच्छ जगत्!

मुझे क्षमा कर !! मैं तुझ से कुछ नहीं चाहती, केवल मेरे पुत्र को—मेरे सर्वस्व को मुझे लौटा दे। दीननाथ ! क्या इस जन्म में अब उससे भेंट न होगी ?

दीना०—आयेगा, माता ! वह शीघ्र ही आयेगा।

लक्ष्मी—हाँ, आयेगा इसी आशा पर प्राण ठहरा है। उसको देखने के लिये आँखें व्याकुल हो रही हैं। आलिंगन करने के लिये चित्त चचल हो रहा है। दीनानाथ ! वह बचपन से माता की सेवा किया करना था—उसका प्रेम, संसार में केवल माता ही के लिये था। परन्तु वह अब अपनी दुखिया माता को पूछता भी नहीं। हाय ! मेरी आत्मा इस जगत् में चिंता और दुःख को छोड़ कर परलोक में शान्ति पाने जा रही है।

दीना०—माता जी ! आप अधीर न हों—मुझे आशा है कि वह आज अवश्य ही आयेगा। कदाचित ससुराल में ससुर ने रोक लिया हो।

लक्ष्मी—आशा के रूप में एक मात्र मधुरता छिपी रहती है। परन्तु आज मैं आशाहीना होगई। दीननाथ ! आत्मा एक बीज है, जो प्रत्येक जन्म में शरीर रूपी खेत में बोया जाता है, और उसमें आशा की लतायें लगतीं, तथा लताओं में कामनाओं के फल फलते हैं। आज उसी शक्तिवान् आत्मा का वृक्ष रूपी पुत्र, कल्पित प्रेम की उष्ण वायु से भस्म होकर खाक हो रहा है।

दीना०—नहीं, माता जी ! नहीं। ऐसे शब्द जिह्वा पर न लाइये। यह कैसी बातें आप कह रही हैं ?

लक्ष्मी—दीनानाथ ! मेरे परिश्रम से लगाये हुए वृक्ष

यदि मुझे फूल-फल न दें तो भी मैं उसे नहीं त्याग सकती। जिस प्रकार एक के घर में दूसरा जबर्दस्ती अधिकार जमा लेता है, वैसे ही मेरे भोले भाले पुत्र को दूसरों ने अपना लिया। देखो-देखो, मेरे शरीर से अग्नि ज्वाला निकल रही है, ज्वाला की प्रचण्ड अग्नि से शरीर भस्म हो रहा है। थोड़ी ही देर में यह शरीर राख हो जायेगा। परन्तु उसके देखने की अभिलाषा आत्मा में सदैव बनी रहेगी।

दीना०—माता जी! रात्रि अधिक बीत गई है ज़रा सो रहिये। सवेरा होते २ भगवान दास अवश्य आ जायेगा।

लक्ष्मी—हाँ, मेरे जीवन का भी अब सवेरा है। मैं सोना चाहती हूँ, परन्तु पुत्र की लालसा सोने नहीं देती। दीननाथ! मैं उसकी स्त्री को बकी झकी थी, इसी से वह रूठ कर चला गया, अब वह नहीं आयेगा। अच्छा, देखो मेरे मरने के बाद मेरे लाल को दुःख न होने पाये।

दीना०—हे ईश्वर! माता की पवित्र छाती में कुपूतों की अपवित्रता गुप्त है। हे कुपूतो! एक आइना तोड कर तुम दूसरा मोल ले सकते हो, परन्तु माता के हृदय को तोड कर न उसे जोड़ सकने हो न दूसरा खरीद सकते हो। ईश्वर की भक्ति, संसार का सुख, परलोक का आनन्द सब कुछ तुम्हें एक माता के आशीर्वाद में है।

नरक से उद्धार चाहो तुम तो इनका नाम लो।
सब यतन निष्फल हैं इनकी शरन विश्राम लो॥
बढ़ गई है पाप-धारा क्यों पड़े मझधार में।
पार होना चाहो तो माता के चरन थाम लो॥

लक्ष्मी—हाय! मृत्यु के समय भी बार बार उसकी याद आती है। भगवान के बदले पुत्र का नाम जिह्वा लेती है। पुत्र! किसका पुत्र? कैसा पुत्र? पुत्र कौन है? कोई नहीं। मुझे कभी न पुत्र था, न कभी मैं माता बनी थी। दयामय! इस अन्तकाल में मुझे अपने चरणों में स्थान दो। इस अन्धकार में ठोकरें खाने से बचा लो!!

दीना०—माता जी! भय न कीजिये—आप शीघ्र ही आराम हो जायेंगी।

लक्ष्मी—ठीक है। मुझे कुछ भी भय नहीं है। मैंने आज तक किसी का बुरा न चाहा, जो उचित समझा वही किया। आशा है भगवान मुझे अपने चरणों में स्थान देंगे।

दीना०—शोक में विह्वल होकर यों धैर्य न खोइये। भगवान दास रास्ते ही में होगा।

लक्ष्मी—मैं भी रास्ते ही में हूँ।

दीना०—मैं कहता हूँ वह आता ही होगा।

लक्ष्मी—हाँ, वह आयेगा और अवश्य आयेगा, परन्तु मेरे चले जाने के बाद। आज वह आयेगा यही विश्वास साथ लेकर जाती हूँ। पक्षी बोल रहे हैं-मेरे जीवन का भोर हो गया। उधर देखो, सामने खिडकी से हरे भरे वृक्ष मुझे झाँक २ कर बुला रहे हैं। वह सब अपने हाथ हिला २ कर चलने के लिये कह रहे हैं। मैं जाती हूँ, तुम सब को सदैव के लिये छोडती हूँ। यही मेरी अन्तिम भेंट है।

दीना०—हे भगवन्! यह क्या?

लक्ष्मी—हा भ-ग-व-न्! [मर जाना]

दीना०—दयामय ! क्या सब समाप्त हो गया ? आह ! विरह के वायु ने टिमटिमाते हुए दीपक को बुझा दिया। एक पानी का बुल बुला समुद्र में उठा और लीन हो गया। ओस का एक बूँद कमल के पत्ते से ढुलक गया। जाओ, माता ! जगदम्बा की गोद में सुख की नींद सोने जाओ। पुत्र—कन्या, धन-धाम, सब को भूल कर उस स्थाई सुख और अमर-प्रेम में लीन हो जाओ ॥

स्वप्न समझो इस जन्म को कष्ट इसको मान लो।
'मेरी आशा' है निराशा तुच्छ सब को जान लो॥
शोक पश्चात्ताप है यह बचपने की भूल है।
चन्द घण्टों की हो शोभा जिससे ये वह फूल है॥

(ड्राप—सीन)

भोलानाथ का मकान।

(भोलानाथ का बैठे दिखाई देना)

भोला०—धन-मान-विषय वासना इत्यादि एक ऐसे पुरुष को जो ससार और उसके व्यवहार को तुच्छ समझता हो, कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकती। माया की मोहिनी मूरत उसको साधना के व्यसन से हटा नहीं सकती। यदि संकल्प दृढ हो, प्रतिज्ञा अटल हो, तो समाज का दूरदर्शी मनुष्य भयानक स्थिति में पडा हुआ भी दुःख उपवास, रोग-शोक की उपेक्षा करके इस ससार में निर्भय चित्त से रह सकता है। धनबल अथवा जन बल न होने पर भी वह अपने चरित्र-बल और प्रतिज्ञा बल से संसार के दुःख-सुख से युद्ध कर सकता है। सुनता हूँ, धीरे धीरे मेरी जमीन्दारी समाप्त हो रही है। परन्तु इस भय से एक बूढा मनुष्य जिसके पास न आयु हो न शक्ति, दान पुण्य बन्द कर दे? अपने भाइयों को दुख में देखकर भी उनकी सहायता न करे?

(प्रेमशंकर मुनीम का आना)

प्रेम०—श्रीमन्! आप दोनों हाथ से अपनी सम्पत्ति लुटा रहे हैं, अंत में आप को हाथ धोकर मार्ग में बैठना पडेगा।

भोला०—मार्ग में बैठना पडेगा? अच्छा, प्रेमशंकर! जब समय आयेगा, तब देखा जायेगा।

प्रेम०—आयेगा नहीं स्वामी, समय आ गया है। आपके गुमाश्ते ने सारा लगान वसूल करके खुद हड़प कर लिया।

भोला०—उसने ऐसा क्यों किया? मुझ से माँगता तो मैं उसे स्वयं दे देता।

प्रेम०—और गौरीनाथ से मिलकर उसने नीलामी-इश्तहार निकालना बन्द कराकर जमींदारी भी नीलाम करा दी।

भोला०—नीलाम करादी? नहीं नहीं प्रेमशकर! तुम्हारे सुनने में भूल हुई होगी।

प्रेम०—भूल नहीं हुई। मैंने स्वयं जाँचकर लिया है। गौरीनाथ ने सब ज़मींदारी ख़रीद ली है।

भोला०—अच्छा, खरीद लिया है तो ख़रीद लेने दो। वह तो आनन्द से रहेगा, उसे तो सुख प्राप्त होगा?

प्रेम०—श्रीमन्! चोर कामी- लम्पट और छली धर्म की बातें नहीं सुन सकता। अब से भी आप हाथ समेटिये इस तरह अपना धन न खोइये।

भोला०—प्रेमशंकर! हाथ कहीं समेटे जा सकते हैं? गरीब की प्रार्थना सुन कर आप ही आंखों में आँसू भर आते हैं। उन्हें छाती से लगा लेने के लिये हाथ आपही आप आगे बढ़ जाते हैं। तुम्हीं कहो, इन हाथों को कैसे समेट लूँ?

प्रेम०—नहीं अभी समय है। घोर-निद्रा से जागिये—मोह के वशीभूत होकर अपना सर्वनाश न कीजिये।

भोला०—प्रेमशंकर! चेष्टा करने से घर का ख़र्च कम कर सकता हूँ, मगर दूसरों के दुःख छुड़ाने से हाथ समेटना अस-

म्भव है। तुम जानते हो कि त्याग में क्या आनन्द है? दान में कैसा सुख है? मेरा यश आँखों के आँसू पोंछ देना, सूखे होठों में हँसी पैदा कर देना और मलिन मुख को प्रसन्न करना है। कठोर से प्यार करना, पापी से कृतज्ञ बनाना, एक सृष्टि है। मैं धनहीन होने पर शक्ति हीन नहीं हो सकता। मेरी आत्मा अमर बल, अमर सुख को प्राप्त कर चुकी है। आशा है भगवान मुझे कभी भी दुख में न फँसायेगा।
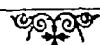
प्रेम०—परन्तु आज मैंने सुना है कि भगवान दास ने चार सौ रुपये माह पर एक वेश्या को नौकर रक्खा है।

भोला०—हैं! यह मैं क्या सुन रहा हूँ? जिसका प्रेम आकाश की तरह उदार और स्वच्छ था, उस पर कैसे कालिमा का बादल छा गया? जो प्यार पहाड की तरह अटल ध्रुव तारा के समान स्थिर था, वह कैसे विचलित हो गया!

प्रेम०—यही तो दुःख है कि वह प्यार जो समुद्र की लहरों की भाँति उठ रहा था, वह आज किनारे पर आने से प्रथम ही शिथिल हो गया।

भोला०—प्रेम! इसका कारण?

प्रेम०—श्रीमान् की लापर्वाही। श्रीमान् घर में रहते हैं, परन्तु इतना ध्यान नहीं देते कि भगवान दास चार-चार दिन घर क्यों नहीं आता? सरस्वती इसी आन्तरिक वेदना से पीली पडती जा रही है। वह देखिये, उदासीनता के चिन्ह से अपने चन्द्रमुख को मलिन बनाये इधर ही आ रही है।

(सरस्वती का आना)

भोला०—पुत्री सरस्वती! आजकल तू क्यों दुःखी देख पड़ती है?

सर०—दादा! न जाने मुझे कौनसा आन्तरिक रोग हो गया है, जो हर समय दुःखित किये रहता है।

भोला०—बताओ बेटी! वह रोग क्या है? मुझे बताओ। मैं तुम्हें आरोग्य करने के लिये अपना सब कुछ लगा देने को तैयार हूँ।

प्रेम०—श्रीमन्! क्या आपने मेरी बातों का अर्थ नहीं जाना? मैंने अभी कहा है कि भगवान दास चार-चार दिन घर नहीं आता है।

भोला०—सरस्वती! क्या तूने अपने किसी आचार-व्यवहार से अपने पति को अप्रसन्न किया है? क्या उसकी किसी आज्ञा की अवहेलना की है?

सर०—नहीं, पिता जी! अपनी जान में तो मैंने उनकी कोई बात नहीं टाली। मैं उन्हें अपना ईश्वर अपना सर्वस्व समझती हूँ।

भोला०—फिर भी वह तुझसे घृणा करता है—चार चार दिन तक घर नहीं आता है!

सर०—पिता जी! उन पर किसी ने जादू कर दिया है।

भोला०—समझ गया सरस्वती, मैं तेरी बातों का अर्थ समझ गया। मुझे भुलावा देने की चेष्टा न कर।

प्रेम०—देखिये! वह सामने से आ रहे हैं।
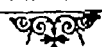
सर०—पिता जी! आज तक आपने मेरी कोई बात नहीं टाली। अतः मैं विनती करती हूँ कि उनको कुछ न कहें—उन पर रुष्ट न हों। (भगवान दास का आना)

प्रेम०—आइये, भगवानदास जी! कहिये कहाँ से आ रहे हैं?

भग०—कहीं से भी नहीं। यों ही जरा हवा खाने और टहलने के लिये गया था।

भोला०—कहो आजकल कैसी और किधर की हवा चल रही है? भगवान दास! जब से तुम यहाँ आये, एक पत्र भी अपनी माता के नाम न लिखा! बताओ, उनकी क्या दशा होगी? वे जीवित हैं या नहीं?

भग०—मुझे समय नहीं मिलता जो पत्र लिखूँ।

भोला०—तुम्हें कौनसा ऐसा काम लगा रहता है? रात-दिन क्या करते हो? शोक! वह माता जिसने संसार त्याग कर तुम्हें पाला, जिसने तुम्हें मनुष्य बनाने के लिये अपने आप को मिटा डाला, उसको एक पत्र भी लिखने के लिये तुम्हारे पास समय नहीं है? जब तुम्हें अपनी माता की—जो धर्म की अवतार तुम्हारे जीवन की आधार है,—याद नहीं है, तब संसार में नहीं मालूम तुम कौन कौन से पाप कर सकते हो—मूर्ख! जीवन की प्रथम शिक्षा मातृ-भक्ति है। जिस वस्तु से भक्ति और स्नेह हस उठते हैं, वह क्या है? मातृभक्ति है। जिस कोमल करों के स्पर्श से कर्त्तव्य की कठिनता दूर होती है, वह क्या है? मातृभक्ति है। जो स्वर्गीय प्रतिमा मनुष्य जीवन को मंडित कर देती है, आनन्द के साथ प्रकृति के ऋण चुकाती है, मरती हुई शक्ति को जीवित करती और मृत्यु के

भयानक घड़ी को प्रकाशित करती है, वह क्या है ? मातृ-भक्ति ! उस मातृ-भक्ति उस पवित्र वस्तु से जो रहित है, वह पुत्र पापी, कुकर्मी, दुराचारी और स्वार्थी है। बोल, जवाब दे। तेरी माता कैसी है ? मैं पूछता हूँ बता इस समय वह कहाँ है?

(दीनानाथ का आना)

दीना०—(आकर) स्वर्ग में। भगवान दास ! उत्सव करो, खुशी मनाओ, तुम्हारी माता का देहान्त हो गया, तुम्हारी सारी आफतें दूर हो गईं।

सर०—क्या माता जी मर गईं ?

भोला०—हैं ! क्या परलोक सिधार गईं ?

भग०—क्या माता जी का देहान्त हो गया ?

दीना०—हाँ, सब समाप्त हो गया। दुष्ट ! पापी ! तूने ही अपनी माता को मार डाला—तू ही उनका प्राण-घातक है। तू उन्हें भूल गया, परन्तु उनकी अन्तिम साँस से तेरे ही नाम के शब्द सुनाई दे रहे थे। ऐ कलियुग की बहुओ ! तुम्हारी जाति को भी धन्य है ! तुमने एक दुखियारी माता की गोद से उसके एक पुत्र को छीन लिया। तुम भाई को भाई का, पिता को पुत्र का शत्रु बना देती हो। तुम्हारी मंत्रणा बड़े बड़े घरों में फूट पैदा करवा देती है।

भोला०—आह ! संतान का प्रेम माता-पिता के हृदय में उमड़ता ही रहता है—वह कभी कम नहीं होता। मूर्ख भगवान दास ! तूने माता को दुःख नहीं दिया, बल्कि अपने लिये नरक का द्वार खोल लिया। ऐ निर्लज्ज ! कुपूत ! तुझे नरक में भी स्थान न मिलेगा। याद रख, तू हर समय अपनी दुःखिनी

माता की छाया देख देख कर कांपता रहेगा। यदि सोना भी छूयेगा तो वह मिट्टी हो जायेगा। ओ कामी! धोखेबाज! ठग! तूने माता को मार डाला, स्त्री की यह दशा कर दी! कुकर्मी तुझ पर धिक्कार है।

(बेहोश हो जाता है सब आश्चर्य युक्त होते हैं)

टेब्ला

मुन्नी का मकान।

(मुन्नी का गाते हुए आना)

मुन्नी— गाना—

नारि-जाति में धन्य वही जो तजे न धर्म का ध्यान ज्ञान॥
सतपन में न्यारे न्यारे-तन मन धन वारे सारे—
मान रहे जाये प्रान॥ नारि जाति०—
जगत् में आई हो तुम तो यह परीक्षा के लिये—
डिगे न कोई भी सत् से धन इच्छा के लिये॥
करो शुभ कर्म चलो वच के पाप-मार्ग से।
पड़ो न लोभ के सागर में अपेक्षा के लिये॥ सतपन०—

परमात्मन्! वह देश रसातल को जाये, जहाँ वेश्या की सृष्टि हो। वह पुरुष नरक में जाये जो लालसा की अग्नि-कुण्ड में घी डाल कर वेश्या-कुल को बढ़ाता है। ऐ बहनो! अपने भविष्य को सोचो। तुम जब पिंजरे में चोट की यंत्रणा से छटपटाती हो, तब यही तुम्हारे असत्य प्रेमी खड़े होकर तमाशा देखते हैं। जब तुम मर्मव्यथा से मरती हो, तब यही लोग तुम्हारी दशा पर हँसते हैं। कहो, क्या तुम्हारा प्रेम मिथ्या और घृणा के योग्य नहीं? तुम वह दिवस हो, जो मलिन है—तुम वह सूरज हो जो बादलों में छिपा है—तुम वह मेघ हो जिसका गर्जन मिथ्या है। देखो! स्त्री के लिये—

"एकहि धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥"

(दायाँ और बायाँ का आना)

कौन? उस्ताद जी प्रणाम।

दोनों—प्रसन्न रहो क्या हमें बुलाया है?

मुन्नी—जी हाँ। आज से मेरा विचार है कि इस गाने-बजाने के काम को त्याग दूँ।

दायाँ—ठीक है। यह तो तुम लोगों का नियम है, कि जब तुम लोग किसी युवक पर अनुरक्त होती हो, तो उसका ही दम भरने लगती हो—उसके लिये अपना सब कुछ त्याग देती हो। परन्तु ·· ···········

मुन्नी—परन्तु क्या उस्ताद जी!

दायाँ—यही कि कोई चाहे तुम पर अपना तन मन धन सब कुछ अर्पण कर दे, परन्तु तुम लोग उसका सर्वस्व अपनाने के बाद उससे घृणा करती हो।

मुन्नी—यह आप कहते हैं ?

दायाँ—मैं सत्य कहता हूँ। आज तुम्हारा यह प्रेम जो तीर की तरह तेज, आँधी की तरह प्रबल और लहर की तरह उमडा है वह केवल क्षणिक है।

मुन्नी—कारण ?

दायाँ—कारण एक हाथ से ताली नहीं बजती।

मुन्नी—आप के कहने का तात्पर्य यह कि मैं जिसे चाहती हूँ वह मुझे नहीं चाहता। उस्ताद जी ! प्रेम से मिट्टी भी सोना हो जाता है, प्रेम से अपवित्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है।

बायाँ—यह केवल प्रेम का जोश है जो तुम्हारे विचार में ऐसी बात आ रही है। अच्छा, तो अब हम लोगों की कोई आवश्यकता नहीं।

मुन्नी—हाँ, उस्ताद जी ! अब मुझे क्षमा करें।

बायाँ—(स्वगत) तुम नरक में पडो, मुझे क्या ? यहाँ नहीं तो किसी दूसरी जगह डेरा डालेंगे—एक पक्षी उड़ गया तो क्या, दूसरा पालेंगे। (जाना)

मुन्नी—इस संसार-सागर में नारी जीवन एक नौका है जो धर्मरूपी सम्पत्ति से बोझी हुई डगमगा रही है। इच्छा रूपी नाविक कर्त्तव्य का पतवार लिये हुए सोचता है, इस पार जायें या उस पार ? एक ओर असत्य प्रेम, कुबेर का भडार लिए हुए बुला रहा है। दूसरी ओर आने के लिये सत्य प्रेम समझा रहा है। जो कर्त्तव्य से विचलित हो जाती हैं, वह डूब जाती हैं और जो कर्त्तव्य का ध्यान रखती हैं वह जगत् में मान और यश पाती हैं। अतः मैं भी अब इसी सत्य प्रेम द्वारा

अपना जीवन सार्थक बनाऊँगी—एक से सम्बन्ध कर एक ही के प्रेम में लीन हो जाऊँगी। मेरे प्रीतम! मेरे प्राणेश भगवान-दास! आओ, दासी तुम्हारे लिये व्याकुल हो रही है।

गाना—

तुम्हें है चाहा तुम्हें ही चाहूँगी प्रीतिपन धारे।
हृदय से अपने तुम्हारे मन को निबाहूँगी प्यारे॥
तुम्हारे दुख में दुखी रहूँगी तुम्हारे सुख में सुखी रहूँगी।
कभी न होना हमारे प्रीतम मुझसे तुम न्यारे॥
बनूँगी साया फिरूँ संग संग तुम्हारे चरणोंकी धूल होकर
हमारे हृदय के तुम कमल हो हो नैन के तारे॥ तुम्हें०—

भगवान०—(आकर) प्रेम मदमाती सुन्दरी मुन्नी! कहो आज कौनसा प्रेम-गान कर रही हो?

मुन्नी—आइये प्राण वल्लभ! मैं आप ही के लिये व्यथित हो रही हूँ।

भग०—अहो भाग्य! जो तुम्हारे मुख से मेरे प्रति ऐसे शब्द निकल रहे हैं।

मुन्नी—मेरे नाथ! अब मैं आप को आप के बदले तुम कह कर बुलाया करूँगी। ज्यों ज्यों यह प्रेम दृढ़ होता जायेगा त्यों-त्यों आप से तुम, तुम से मैं कहने लगूँगी।

भग०—प्यारी मुन्नी! यह मैं क्या सुन रहा हूँ? मेरा हृदय फूला नहीं समाता है—आज भगवानदास हर्ष से गद्गद् हुआ जाता है।

मुन्नी—प्रीतम! अब यह वेश्या जो कल तक तुम्हारा धन

देख कर तुम से प्रेम करती थी, आज तुम्हारे आगे प्रेम—पवित्र प्रेम की भिक्षा माँगने के लिये आँचल फैलाती है

भग०—प्यारी मुन्नी! आज तुम क्यों इतना उन्मत्त हो रही हो? स्पष्ट कहो, क्या रहस्य है? इन बातों का क्या अर्थ है?

मुन्नी—प्रीतम! केवल सत्य प्रेम का दान। आज मैं लता की भाँति ऊपर उठ कर आप को घेरे हुए हूँ। परन्तु ऐसा न हो कि जिस समय मैं आप को रुचिकर न होऊँ, आप मेरे प्रेम-पाश में घेरने वाली लता को काट कर फेंक दें।

भग०—कौन कहता है?

मुन्नी—मैं-मेरा विचार। मेरा हृदय, मेरा आचार। कारण जो बिना विवाह के प्रेम किया जाता है वह अपवित्र है।

भग०—प्रिये! यह केवल कहावत है। प्रेमहीन सभी बन्धन अपवित्र हैं। चाहे रस्सी से बाँधो, चाहे मंत्र पढ़कर बाँधो, चाहे कायदे-कानून से बाँधो, चाहे विवाह-बन्धन में बाँधो, परन्तु जब हृदय में प्रेम नहीं है तो सभी बन्धन व्यर्थ हैं।

मुन्नी—किन्तु ... ...

भग०—किन्तु क्या? प्रेम के लिये दास भाव नहीं है। विपत्ति नहीं है—जिम्मेदारी नहीं है—कोई बन्धन नहीं है।

मुन्नी—परन्तु प्रेम जिसके साथ है, न्याय से उसी का अधिकार है।

भग०—अवश्य। तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजीवन तुम्हें नहीं त्यागूँगा।

मुन्नी—सत्य कहते हो? क्या तुम प्रेमपात्र बन कर मुझ को सदैव अपनाते रहोगे?

भग०—निस्सन्देह।

मुन्नी—अच्छा, यह तो कहो कि तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं?

भग०—हुआ है।

मुन्नी—स्त्री भी है?

भग०—हाँ, है।

मुन्नी—और वह तुम से प्रेम भी करती है।

भग०—हाँ, वह मुझे अपना हृदयेश्वर समझती है?

मुन्नी०—और तुम?

भग०—मैं उसे मार्ग की भिखारिन समझता हूँ।

मुन्नी—मार्ग की भिखारिन? एक पतिभक्ता स्त्री जो पति गृह को अपना मन्दिर, पति पद को देवार्चन और पति सेवा में मर जाना अपनी मुक्ति जानती है, ऐसी पति परायणा और मार्ग की भिखारिन? भाग भाग ओ वेश्या के गृह में जन्म लेने वाली मुन्नी! ऐसे कामी और स्वार्थी पुरुष की परछाई से भाग। अच्छा भगवान दास! आज तुम जाओ।

भग०—हैं! क्या मैं चला जाऊँ? कारण?

मुन्नी—कारण मेरा चित्त इस समय चंचल हो रहा है—मैं एकान्त चाहती हूँ।

भग०—क्या प्रेम के बदले घृणा? यह क्या कहती हो!

मुन्नी—वही, जो हृदय कहला रहा है।

भग०—समझा-समझा। तुम्हारा हृदय नहीं किन्तु मेरा धना-भाव मुझे यह शब्द सुना रहा है। तुम नहीं, किन्तु मेरा अर्थाभाव मुझे जाने को कह रहा है। अस्तु चिन्ता नहीं, इस समय मैं जाता हूँ कल मिलूँगा। (जाना)

मुन्नी—मुन्नी! सोच और विचार कर। जब यह स्वार्थी, कामी, अपनी सद्गुणी स्त्री के प्रेम को मार्ग का भिक्षुक समझ कर कभी कुछ दे देता और कभी पैरों से ठुकराता है, तब यह कब तेरा निर्वाह कर सकता है? जब इसने वेद शास्त्र के मंत्र द्वारा बँधे हुए बन्धन को तोड़ दिया तब यह कब तेरे प्रेम में बँध सकता है? इसका प्रेम तेरे लिये समुद्र में उठती हुई लहर, राहु का ग्रास, दावानल का आलिंगन और भूखे सिंह का आखेट है। मुन्नी! तेरी जाति संसार को ठगती है। परन्तु यह तुझे ठगने आया है। भाग इसके अभिशापित प्रेम, सर्वनाशक स्पर्श और नारकीय यातना से भाग!

(चले जाना)

मार्ग ।

(हीरा का गाते हुये आना)

हीरा— गाना ।

मोरी रोवत हैं अँखियाँ फटत है छतियाँ ॥ मोरी०
पाप का बादल गरज रहा है कलुषित मन अब तरज रहा है—
क्षमा करो अपराध 'दास' की कल न पड़त दिन रतियाँ ॥ मो०—

आह ! आशा और निराशा, लाभ और हानि, स्वर्ग और नरक; पाप और धर्म ये सब मेरे जलते हुए मस्तिष्क के धुआँधार रंग-मंच में हाथ पकड़ कर नृत्य कर रहे हैं। पाप मुझे देखकर हँस रहा है, नरक माया में बुला रहा है, निराशा घृणा की दृष्टि से देख रही है, कहाँ जाऊँ। कहाँ छिपूँ ? चारों ओर पाप के बिच्छू डङ्क मार रहे हैं। क्षमा करो। हे ईश्वर ! मुझ अपराधिनी के अपराध को क्षमा करो ! (मुन्नी का आना)

मुन्नी—क्षमा करेंगे। भगवान अवश्य तुम्हें क्षमा करेंगे। अन्यायी को न्याय और अत्याचारी को दंड देंगे।

हीरा—कौन बहन मुन्नी ! तुम इस निर्जन-मार्ग में कहाँ ! घृणा करो, मुझ कलंकिनी नीच से घृणा करो।

मुन्नी—मैं तुम्हारी ही खोज में जा रही थी, कि तुम्हारे दुख

भरे शब्दों की कातर पुकार सुन कर यहां आ गई। कहो तुम कहाँ जा रही हो?

हीरा—कहाँ जाऊँ? चारो ओर दुःख और कष्ट का सागर उमड रहा है। न कहीं शान्ति है और न कहीं विश्राम?

मुन्नी—बहन! धैर्य से काम लो। वह परमात्मा तुम्हें अवश्य शान्ति देगा। तुम्हारी रक्षा करेगा।

हीरा—शान्ति? बहन मुन्नी! एक पापिनी और पिशाचिनी को शान्ति कहाँ? स्वर्ग के सागर में नारकीय अवला को स्थान कहां? मैंने अपने कर्म से समाज को ठुकराया है, धर्म को तिलाञ्जलि दी है, परिवार को निन्दित किया है। अतः ऐसे पातकी के लिये कहीं भी क्षमा नहीं।

मुन्नी—पर यह तुम्हारा दोष नहीं। तुम्हें विश्वास के समुद्र में डुबाया गया; प्रतिज्ञा के अन्धकूप में ढकेला गया। प्रेम के सुन्दर वन में तुम अन्याय की आखेट हुई। शोक का त्याग करो—चलो घर लौट चलो।

हीरा—घर चलूँ? पर अब मेरा घर कहाँ है? मेरे घर वाले कहाँ हैं? नहीं जिस घर को छोड कर चली आई अब उसमें फिर पाव नही रक्खूगी। उस पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने का अब मुझे कोई अधिकार नहीं।

मुन्नी—अपने घर नहीं तो मेरे घर चलो। वह भी तुम्हारा ही घर है।

हीरा—हमारा हो या पराया, मैं अब किसी घर में पाँव नहीं रख सकती।

मुन्नी—कारण ?

हीरा—कारण घर में पांव रखते ही ज्ञात होता है कि उसके कोने कोने से हज़ारों नाग फन फैलाये हुए मेरी ओर झपट रहे हैं। हरेक ईंटों से भयानक प्रतिध्वनि हो रही है।

मुन्नी—फिर कहाँ जाओगी ?

हीरा—कहाँ जाऊँगी ? इसका उत्तर मैं स्वयं नहीं दे सकती। जीवित रही तो फिर घूमती-फिरती इधर आकर तुम्हारा दर्शन करूँगी।

मुन्नी—क्या यह निश्चित विचार है ?

हीरा—हाँ निश्चित और दृढ।

मुन्नी—अच्छा बहन ! मुझसे जो भूल हुई हो उसे क्षमा करना। लो यह अंगूठी, कष्ट के समय इसे बेंच कर अपने काम में लाना।

हीरा—अँगूठी ? अच्छा, मैं यह समझ कर ले लेती हूँ कि इससे मेरी चिता की सामग्री तैयार हो जायेगी। अब मुझे विदा दो।

मुन्नी—चलो, मुझे भी उसी ओर एक आवश्यक कार्य से जाना है। (दोनों का जाना दूसरी ओर से गौरी इत्यादि का आना)

गौरी०—ओह ! यह अनादर ! यह अपमान ! यह तिरस्कार ! शहर का रईस और वेश्या के घर पर अपमानित हो ? ग्राम का ज़मींदार एक वेश्या के सामने लज्जित हो ? लोमडी सिंह को आंखें दिखाये ? चमगीदड़ और बाज से चहचहाये ? ओ हीरा दुष्टा हीरा ! मेरे क्रोध का भयकर। मेरे भयंकर प्रति शोध से डर। मैं क्षण भर में तुझे और तेरे भविष्य को चकना

चूर कर दूँगा—मृत्यु की महा निद्रा में तुझे सदैव के लिये सुला दूँगा। तू मुझसे विरोध करके कब बच सकती है? मुझे अपमानित करके कब जीवित रह सकती है? एक वेश्या के घर पर क्या मैं अपना यह अपमान सह सकता हूँ?

(कालीदास, माधो का आना)

काली०—कभी नहीं।

माधो—कदापि नहीं।

गौरी०—कौन? माधो और कालीदास! कहो, उस समय तुम लोग कहाँ चले गये?

काली०—पुलिस को बुलाने।

माधो—शस्त्र ले आने।

गौरी०—पुलिस? पुलिस ने क्या उत्तर दिया?

काली०—मैंने चांदी के पासे से पुलिस को भी जीत लिया।

गौरी०—तो क्या मेरे बल प्रयोग करने पर पुलिस मुझे बचा लेगी?

काली०—अवश्य। अन्यायी का न्याय करेगी।

गौरी०—तुम मूर्ख हो—तुम्हारी बुद्धि घास चरने गई है।

माधो—लक्षण तो ऐसाही देख पड़ता है।

गौरी०—बोलो, स्पष्ट कहो, पुलिस से क्या बात तै कर आये?

काली०—यही कि घूस देते जाइये और प्रसन्नता से जीवन का आनन्द उठाइये।

गौरी०—अर्थात्?

काली०—अर्थात् विना किसी रोक टोक के रातभर वेश्या के कोठे पर गाना सुनिये और मदिरा का दौर चलाइये।

गौरी०—तुम पागल हो गये हो!

काली०—भाव तो ऐसा ही प्रकट होता है।

गौरी०—जाओ मेरे सामने से चले जाओ। मेरा मस्तिष्क चक्कर खा रहा है। मुझे केवल प्रतिशोध और प्रतिकार यही शब्द सुनाई दे रहा है।

माधो—तो मस्तिष्क पर पीपरमेन्ट आयल दीजिये, कानों में रुई भर लीजिये।

गौरी०—चुप रहो। अधिक बातें न करो। तुम चाप-लूस हो—खुशामदी हो—पत्तल के मित्र हो।

काली०—तो क्या कोई चिता पर भी साथ जाता है? यह तो स्पष्ट है, कि मित्रता केवल जीते जी का नाता है।

गौरी०—क्या वे दिन भूल गये जब गिलास पर गिलास ढाल रहे थे? मेरे पसीने पर अपना रक्त बहा रहे थे।

काली०—नशे के साथ उसका भी उतार हो गया। गिलास की मदिरा में वह दिन भी डूब गया।

गौरी०—धिक्कार है ऐसी मित्रता पर!

माधो—थू है ऐसे मदिरा-पान पर!!

गौरी०—मुझे मालूम हो गया कि तुम लोग केवल जी हाँ के मित्र थे।

काली०—मैं क्या? आजकल सौ में निन्नान्वे ऐसे हैं जो वेश्यागामी, मद्यपी, धनाढ्य की हाँ में हाँ मिलाकर मित्रता जोड़ लेते हैं, परन्तु धनाभाव होने और विपद् पड़ने पर तोते

की तरह अपनी आँखें फेर लेते हैं। मित्र की सहायता करना तो दूर है दण्ड प्रणाम तक छोड देते हैं।

गौरी०—और वे मित्र कहलाते हैं?

माधो—जी नहीं, वे प्याला वाले मित्र के नाम से पुकारे जाते हैं। अब संसार की मैत्री यही है कि उनके साथ अपना धन स्वाहा करो और मुख पीछे मूर्ख बनो! जिस मित्र की आजन्म सहायता करो, अपना धन देकर उनका पेट भरो वह स्वार्थ के वशीभूत होकर आजन्म के उपकार को भूल जाते हैं। लोभ में पड कर कृतघ्न हो जाते हैं।

गौरी०—इसका अर्थ?

काली०—अर्थ यही कि हम उन में नहीं है। हम आपको कुपथ से बचाना चाहते हैं—अच्छे मार्ग पर ले आना चाहते हैं।

गौरी०—वह कैसे?

काली०—ऐसे कि उस दिन प्रेम का उमङ्ग था—मदिरा का तरङ्ग था, जो ऐसी घटना घट गई—आप के कुकर्म का प्रायश्चित्त था जो असामयिक होरा वहाँ पहुँच गई। अब उस निस्सहाय दुखिया पर दया कीजिये, बीती बात को जाने दीजिये।

गौरी०—यह तुम कहते हो? जो कल अपने थे आज मुझे उपदेश दे रहे हो—अपने होकर मुझे कुकर्मी कह रहे हो?

माधो—इस हेतु कि जो गया वह गया, आगे बच जाये, दिन भर भटकता हुआ सायंकाल को घर लौट आये।

गौरी०—ज्ञात होता है रक्तपात के नाम से तुम्हारा हृदय

भयभीत हो गया। वह उत्साह—वह साहस एक हवा का झोंका था जो इधर से आया और उधर निकल गया।

काली०—नहीं, किन्तु वह हृदय विदारक दृश्य, करुणा जनक विलाप देखकर आपका स्नेह घृणा से बदल गया।

गौरी०—कोई चिन्ता नहीं। तुम पलट जाओ, ये पलट जाये, भाग्य पलट जाये, संसार पलट जाये, परन्तु यह प्रतिकार का पुजारी अपने बाहुबल द्वारा उस नीच स्त्री को दंडित बनायेगा—अपने अपमान का बदला अवश्य चुकायेगा।

मा० का०—जो जैसा करेगा वह वैसा फल पायेगा।

(दोनों का दो तरफ जाना)

सरस्वती का मकान।

(सरस्वती का दु:खी अवस्था में दिखलाई देना)

गाना।

सर०—उनबिन जिया जात कल न पड़त एक छन।
आओजी राम मोरे श्याम।
धीर न धरत मोरा प्रान॥

नाथ जी आओ-दरश दिखाओ—
दासी को स्वामी ! धीर बँधाओ।
तुम्हरे चरन की है आश ॥ कल०—

आह! यह वही अमावस्या की रात्रि है, यही वह निर्मल आकाश है जब स्वामीदेव छत पर विहार करते हुए देश-देशान्तर की बातें और पुराणों की कथा कह रहे थे—मैं मग्न मुग्ध होकर चुपचाप सुन रही थी। क्या वह आनन्द का समय वह सुहावन रात्रि फिर लौट कर न आयेगी? वह शुभ घड़ी फिर प्राप्त न होगी? हे बालचन्द्र की चन्द्रिका! मुझ दुखिया पर दया करो—स्वामीदेव के दर्शन देकर मुझ अभागिन की व्यथा हरो—

गाना।

गिनत रही निशि तारे ॥ गिनत०—
आये नहीं स्वामी हमारे ॥ गिनत०—
कल न पड़त मोहे घड़ी पल।
निकसत प्राण हमारे ॥ गिनत०—

(सरस्वती का सोना, मुन्नी का आना)

मुन्नी—यही वह सती है जिसकी शोभा को विरह के कठोर हाथों ने उजाड़ दिया—यही वह कामिनी है जिसके हृदयाकाश को पति-वियोग के काले मेघों ने ढक लिया। अंगों में कैसा लावण्य है? मुख पर कैसी ज्योति है! मस्तक पर कैसी महिमा छा रही है। (पास जाकर) उठो, बहन! उठो।

सर०—मुझ अभागिन को बहन कहने वाली तुम कौन हो?

मुन्नी—तुम्हारी भाँति एक दुखिया, अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हुई एक अवला !

सर०—हे भगवन् ! क्या संसार में मेरी तरह और भी वहनें है ? कहो वहन मुझ हतभागिनी से क्या काम है ?

मुन्नी—मैंने सुना है कि तुम्हारे दादा वड़े आदमी हैं। वे तुम्हें खर्च के लिये ५००) महीना देते हैं।

सर०—हाँ, वही मेरे रक्षक और पालक हैं।

मुन्नी—समझ गई अभी तुम्हारे स्वामी ने एक वेश्या रखी है और उन्हीं रुपयों से उसका खर्च चलाते हैं।

सर०—हैं ! यह तुम क्या कहती हो ? किस साहस से मेरे पति की निन्दा करती हो ? बस, इसके आगे एक शब्द भी मेरे स्वामी के प्रतिकूल न कहना।

मुन्नी—यह तुम्हारी पति-भक्ति है जो तुम ऐसा कह रही हो, अपने पातिव्रत धर्म का पालन कर रही हो। अन्यथा मैं तुम्हारा सब हाल जानती हूँ—तुम्हारे पति को भली भाँति पहचानती हूँ।

सर०—नहीं, इसमें मेरे पति का कोई दोष नहीं—यह दोष हमारा है।

मुन्नी—तुम्हारा है ?

सर०—हाँ, हमीने स्वामी के काम की आग जलाने का ईंधन जुटाया—हमी ने वेश्या का खर्च देकर उनको कुपथ पर चलाया।

मुन्नी—किस कारण ऐसा किया ?

सर०—केवल पति देव के अनहद प्यार पर—उनके अगाध आदर और सत्कार पर।

मुन्नी—क्या तुम्हारे स्वामीदेव तुम्हें प्यार करते थे ?

सर०—हाँ, वे ससार में सब से वढ कर मुझे प्यार करते थे। वे मुझे अपना हृदय, हृदय की अद्भुत आशायें, आशाओं में गत कामनायें अर्थात् अपना सर्वस्व समझते थे।

मुन्नी—और तुम भी प्यार करती थी ?

सर०—पुरुष यदि जवानी की पहली उमंग में एक मुग्धा सरला वाला के चरणों पर आत्म समर्पण कर दे तो जगत् में ऐसी कौन वालिका है जो प्यार के विना रह सके किन्तु ··

मुन्नी—किन्तु ?

सर०—किन्तु जिस दिन उन्होंने अपनी बूढी माता को त्याग कर मेरी उपासना आरम्भ की मैं उसी दिन भयभीत हो गई। मैंने समझ लिया कि यह प्रेम नहीं एक तरह की आसक्ति है, जिसका अन्त भयानक होगा। मैं अपने जीवन के भविष्य को सोच कर काँप गई।

मुन्नी—सत्य है वहन, प्रेम कर्त्तव्य को नहीं भुलाता वरन् कर्त्तव्य पालन करना सिखाता है।

सर०—अस्तु, वही भयंकर भविष्य सन्मुख आया और मेरे लिये संसार में चारों ओर अन्धकार मय हो गया। एक विराट् प्रेम का अमृत सागर मेरे सन्मुख भरा है, पर प्यास से मेरी छाती फटी जा रही है।

मुन्नी—हे भगवन्! मेरी रक्षा कर—मुझ पापिनी अधमा को नरक में भी स्थान नहीं मिल सकता।

सर०—हैं! वहन! यह तुम क्यों रो रही हो? किस कारण ऐसे कातर भाव से विह्वल हो रही हो?

मुन्नी—जिस कारण तुम्हारा सर्वनाश हुआ, जो तुम्हारे सुख-मार्ग का बाधक हुई।

सर०—वह तो मुन्नी वेश्या है।

मुन्नी—बहन! यही वह तुच्छ नीच अभागिनी मुन्नी वेश्या है जिसने तुम्हें इस अवस्था को पहुंचाया—तुम्हारे सुखमार्ग को कंटक मय बनाया।

सर०—कौन? तुम और मुन्नी वेश्या!

मुन्नी—हाँ, यह अपराधिनी तुम्हारे सामने घुटने टेक कर तुम से क्षमा की भीख माँगती है। अपने किये पर पश्चात्ताप करती है।

(मुन्नी का सरस्वती के पैर पर गिरना)

सर०—उठो उठो मेरे प्रीतम की प्रेमिका—मेरे नाथ की प्राणेश्वरी! उठो और मेरे हृदय से आलिंगन करो।

मुन्नी—यह क्या? तुम मुझसे घृणा के बदले प्रेम करती हो! धिक्कार के बदले मेरा आलिंगन करती हो!

सर०—बहन! तुम मेरे हृदयाकाश के चन्द्र की चन्द्रिका, मेरे सुहाग के माँग की सिन्दूर हो।

मुन्नी—बहन! मुझे इन पवित्र शब्दों से सम्बोधन कर लज्जित न करो। मैं अधम हूँ, पापिन हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करो।

सर०—नहीं नहीं यह तुम क्या कह रही हो! तुम से मिल कर मेरी आशा की कली खिल गई—स्वामीदेव नहीं तो स्वामी देव की हृदयात्मा का दर्शन कर मैं कृतार्थ हुई।

मुन्नी—धन्य हो! भारत की सती ललना, तुम धन्य हो!

तुम्हारा यह उच्च विचार, दयार्द्र हृदय आदरणीय है। तुम्हारा पातिव्रत धर्म, सती-कर्त्तव्य सराहनीय है! (भगवान दास का भीतर से आवाज देना)

भग०—मैं उसे देख लूँगा, उस पाजी से अच्छी तरह समझ लूँगा।

सर०—हाँ, वेही हैं। उन्हीं की आवाज है। धन्य भाग्य हमारे जो तुम्हारे चरण आते ही स्वामीदेव पधारे!

मुन्नी—अच्छा, मैं उधर छिप जाती हूँ अन्यथा वह मुझे यहाँ देख कर तुम पर क्रोधित होंगे।

(मुन्नी का छिप जाना, भगवान दास का आना)

भग०—(आकर) मुझे क्या समझा जो उसने चले जाने को कहा। मैं चाँदी के जूतों से उसका मस्तक ठीक कर दूँगा, उसकी नहीं को हाँ में बदल दूँगा।

सर०—नाथ! क्या हुआ? किस के ऊपर रुष्ट हो रहे हैं?

भग०—चुप रहो! इस समय मत बोलो।

सर०—क्या तबीयत अच्छी नहीं है?

भग०—कहता हूँ बकवास न करो। यह तुम्हारा मिनमिन मुझे अच्छा नहीं मालूम होता, तुम को देख कर मेरा चित्त खराब हो जाता है।

सर०—हे भगवन्! अब नहीं सहा जाता।

भग०—नहीं सहा जाता है तो यहाँ से चली जाओ, मुझे अपना मुख मत दिखलाओ।

सर०—कहाँ चली जाऊँ?

भग०—संसार में अनेक स्थान हैं।

सर०—नाथ ! क्या मैं दासी या वेश्या हूँ जो आपका चरण छोड़ कर दूसरे स्थान पर चली जाऊँ ? क्या मैं पेट भर भोजन के लिये यहाँ पड़ी हूँ ?

भग०—तो ?

सर०—मैं अपने लिये नहीं आपके लिये पडी हूँ। चाहे घर टूटा हो; जला हो, उजडा हो; अन्न न मिले, परन्तु स्वामी के लिये स्त्री को वह दुःख भी सोने का सिंहासन है। आह ! स्वामी का सर्वनाश निकट देख कर कौन हिन्दूजाति की सती-ललना एक क्षण के लिये भी अलग हो सकती है !

भग०—वाहरी सती !

सर०—स्वामी ! मेरा सतीत्व, मेरा धर्म आपका नहीं है।

भग०—तो तेरा धर्म है ?

सर०—हाँ, मेरा धर्म है। आप उस देवता की पूजा के पुष्प-पत्र मात्र हो। मैं आपकी पवित्रता चाहती हूँ। यह नहीं चाहती कि वह पुष्प-पत्र किसी अपवित्र स्थान में पड़ कर कलुषित हो।

भग०—और यदि वह प्रथम से ही अपवित्र हो ?

सर०—तो मै अपने आँसुओं के जल से उसे धोकर पवित्र कर लूँगी। अपनी आँखों की ज्योति से उस अपवित्र चिन्ह को मिटा कर स्वच्छ बना लूँगी।

भग०—इसकी परीक्षा ?

सर०—दासी हर तरह देने को तैयार है।

भग०—अभी और इसी समय ?

सर०—इसी समय इसी क्षणः—

आँखों की हो जरूरत तो आँखें निकार दूँ ।
काम आये नाथ के तो यह प्राण वारदूँ ॥

भग०—मुझे इन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं ।

सर०—फिर स्वामी को क्या चाहिये ?

भग०—बस, रुपया ।

सर०—रुपया ? नाथ ! रुपया तो अब मेरे लिये स्वप्न हो गया—दादा जी ने कभी से देना बन्द कर दिया ।

भग०—हैं ! नहीं है ? वह परीक्षा का दावा, वह आज्ञाकारिणी का अभिमान क्या हो गया ?

सर०—प्रभो ! जब तक था कभी हाथ नहीं रोका, कभी आपकी आज्ञा उल्लंघन नही की, परन्तु अब कहाँ से लाऊँ ? क्या यत्न करूँ ?

भग०—मैं यह सब कुछ नहीं जानता । तुझे देना पडेगा । लाख उपाय करो मुझे रुपये लाकर दो ।

सर०—मैं विवश हूँ, कोई उपाय नहीं है ।

भग०—विवश हूँ ? उपाय नहीं है ?

सर०—नहीं ।

भग०—नहीं देगी ?

सर०—मेरे पास नहीं है ।

भग०—(हाथ पकड कर) देख, सीधी तरह दे, नहीं तो इस पिस्तौल से •

सर०—हाँ, मार डालिये, मेरे शरीर के टुकडे २ कर डालिये ।

भग०—मूर्खा ! चाण्डालिन ! तू नहीं मानती तो आज तेरा ही झगड़ा चुकाऊँगा— तेरे ही रक्त से नहाऊँगा ।

(सरस्वती को ढकेलना, उसका गिर कर बेहोश हो जाना)

(पिस्तौल मारने को तानना, मुन्नी का आना)

मुन्नी—ख़बरदार !

भग०—कौन ?

मुन्नी—मैं-मुन्नी।

भग०—मुन्नी ! मेरे राह से हट जा। तू मेरे बीच में न आ।

मुन्नी—ओ नरक के कीड़े ! धिक्कार की मूर्त्ति ! तू इस देवी को यन्त्रणा दे कर—भूखों मार कर मेरा ख़र्च चलाता है ! इसके रूखे और बिखरे बाल, मलिन मुख और फटे वस्त्रों को देख ! विवाहिता स्त्री दुःख झेल रही है—उपवास कर रही है और तू ! ओ कामदेव के पुजारी, उससे वेश्या के खर्च के लिये रुपये मांगता है ? यदि तू मनुष्य है, तुझ में मनुष्यता की लाज है, तो आगे बढ़ और इस सती से क्षमा मांग।

भग०—मूर्खा ! मेरा ही धन खाती है और मुझसे उत्तर-प्रतिउत्तर करते नहीं लजाती है !

मुन्नी—तेरा धन ? ओ घृणा के पात्र ! यदि मैं यह जानती कि तू यह रुपये भीख मांग कर—स्त्री का रक्त चूसकर—अपना पुरुषत्व बेंचकर—चोर डाकुओं से भी नीच बन कर मेरे लिये लाता है, तो मैं तेरे रुपये को घृणा से लात मारती और तेरा मुँह न देखती।

भग०—ओ सुन्दर डायन ! मैं समझ गया, यह सब तेरी ही करतुत है। तूने ही मेरी आशाओं का गला घोंटा है—मेरी अभिलाषा के दीपक को बुझाया है। जा, मेरे सन्मुख से चली जा।

मुन्नी—कभी नहीं, एक अबला गौ को एक क़साई के हाथ छोड़कर मैं कदापि नहीं जा सकती।

भग०—देख, मैं फिर कहता हूँ। मेरे क्रोध की ज्वाला में पड़ कर तेरे जीवन की खेती नष्ट हो जायेगी।

मुन्नी—मैं सती के आँसुओं से तेरी ज्वाला बुझा कर उसे हरी बनाऊँगी।

भग०—देख, मैं क्रोध में आग हूँ।

मुन्नी—तो मैं शन्ति में जल हूँ।

भग०—मैं पराक्रम में सिंह हूँ।

मुन्नी—मैं शक्ति में काल हूँ।

भग०—नीच! पापिन!! दो कौडी की वेश्या! तू यों नहीं मानेगी तो तेरे हठ का फल यों दूँगा।

(भगवान दास का पिस्तौल मार कर भागना, मुन्नी का गिरना)

ड्रेल्ला

सोना का मकान।

(मित्र माधो का बड़बड़ाते हुए आना।)

माधो—लोग कहते हैं "पुत्र हुआ सयाना, तो दुःख-दरिद्र पराना" परन्तु मेरा कहना है कि पुत्र हुआ सयाना, तो दुःख-दरिद्र नगचाना! मित्र सोहन ने अपने पुत्र को धन-धाम का

मालिक क्या बनाया, अपने हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी चलाई। ऐश्वर्य पाते ही पुत्र की आँखें उलट गई—पितृ-भक्ति से फिर कर जोरू-भक्ति में अटक गई। परन्तु मैं ने भी मित्र सोहन को वह युक्ति बताई है, कि क्षण मात्र में सब उलट-फेर हो जाये, और भोला अपने किये पर पछताये। (पुकारना) मित्र-सोहन जी ! अरे भाई सोहन जी !

भोला—(अन्दर से) कौन है भाई ?

माधो—मैं हूँ सोहन का मित्र और तुम्हारा चाचा।

भोला—(आकर) कौन चाचा जी ? प्रणाम।

माधो—प्रसन्न रहो। मित्र सोहन कहाँ हैं ?

भोला—वे ···· वे ·· ·····

माधो—हाँ-हाँ वे कहाँ हैं ?

भोला—वे तो मुझसे नाराज़ होकर आज कई दिन हुए घर से चले गये हैं—बिना किसी अपराध के मुझ पर रुष्ट हो गये हैं।

माधो—तुमने उन्हें कुछ कहा होगा—उनके आज्ञानुसार काम न किया होगा।

भोला—नहीं, चाचा जी ! भला मैं अपनी जिह्वा से अपने पिता को कुछ कह सकता हूँ ?

माधो—नहीं, कदापि नहीं। चाहे दूसरा लाख बातें कह जाये, पर अपने पिता का योग्य पुत्र, पिता को बुरा शब्द सुनाये ? सम्भव है, तुम्हारी स्त्री ने कुछ कहा हो।

भोला—न न न न चाचा जी ! भला पुत्र के रहते बहू

श्वशुर को गालियां सुनाये और निर्लज्ज पुत्र खड़ा-खड़ा सुनता रह जाये !

माधो—धिक्कार है पुत्र पर जो वह ससार में जीवित रहे।

भोला—छीः ! छीः !! पुत्र और पिता को ऐसे शब्द कहे।

माधो—(स्वगत) कैसा भोला बना जाता है—मुझे भी अपनी बातों में भुलाता है (प्रकट) यह तो मित्र सोहन ने बड़ी भूल की जो ऐसे लायक पुत्र को छोड़ कर चले गये और अपने धन का मालिक एक भिक्षुक ब्राह्मण को बना गये ?

भोला—धन ? कैसा धन ?

माधो—हैं ! सुनते ही हो गया बेचैन !

भोला—चाचा जी ! धन-धाम तो जाने के प्रथम ही उन्होंने मुझे दे दिया था।

माधो—तुम मूर्ख हो—गँवार हो। आज मुझे उसी ब्राह्मण-पुत्र से विदित हुआ कि सोहन अपने गड़े हुए द्रव्य का मालिक उसे ही बनाना चाहते हैं।

भोला—अरर !! जब तो अपना सर्व्वनाश हुआ ! फिर क्या करना चाहिये चाचा जी ?

माधो—तू बिल्कुल भोला है–एक गदहे से भी गया गुज़रा है।

भोला—हो सकता हूँ, चाचा जी !

माधो—हाँ, अपनी गरज पर तो सभी होता है। भला पिता का निरादर कर कोई यों अपना धन खोता है ?

भोला—क्षमा कीजिये, भोला अपनी भूल पर रोता है।

माधो—अच्छा, देख मैं एक युक्ति बताता हूँ। वह सामने जो मठ दिखाई पड़ता है-वहाँ पर तुम्हारे पिता ठहरे हैं।

जाओ उन्हें हाथ-पैर जोड़ कर मना लाओ। वहाँ मैं भी उन्हें समझा दूँगा—तेरा उलटा हुआ भाग्य पलटा दूँगा।

भोला—धन्य हो चाचा जी! पर मैं अकेले ही जाऊँ या उस दुम को भी साथ ले जाऊँ?

माधो—दुम का बच्चा! उसे भी लेता जा।

भोला—बहुत अच्छा। (जाना)

माधो—अहा हा हा!! धन का नाम सुनते ही लार टपक गई—आँखें पलट गईं। अब वही मसल है "आधी छोड़ एक को धाये-आधी रहे न सारी पाये।"

(सोहन, भोला और उसकी स्त्री सोना का आना)

सोहन—घृणा! हज़ार हज़ार घृणा!! लाख बार घृणा!!! कभी नहीं, कदापि नहीं, हरगिज़ नहीं। ब्रह्मा का लेख मिट जाये, भाग्य का विधान पलट जाये पर क्या मजाल कि सोहन अपनी प्रतिज्ञा से हट जाये।

भोला—पिता जी! आप नहीं क्षमा करेंगे तो कौन करेगा? अब कभी ऐसा अपराध न होगा।

सोना—श्वशुर जी! हम दोनों की भूल क्षमा कीजिये।

माधो—मित्र सोहन! "बरं बालक एक सुभाऊ"-आपके बच्चे हैं-बुद्धि के कच्चे हैं।

सोहन—हाँ, बड़े हृदय के सच्चे हैं।

माधो—अब हृदय से उन बीती बातों को भुलाइये, इन्हें अपना वही स्नेही पुत्र समझिये। ये प्रतिज्ञा करते हैं कि सदैव अब आपके आज्ञानुकूल चलेंगे—आप की सेवा में रहेंगे।

सोहन—भाई माधो! तुम इनके बीच में न पड़ो। ये देखने में बाप के बेटे हैं, पर बड़े ही खोटे हैं।

माधो—जाने दीजिये, एक बार और क्षमा कीजिये। खोटा पैसा भी समय पर काम आता है—जो जैसा करता है वैसा खुद फल पाता है।

सोहन—खैर, आपके कहने से मैं इन्हें अपने गुप्त धन का मालिक बनाता हूँ, परन्तु ...

भोला—पिता जी! मैं अपनी भूल पर पछताता हूँ। अब कभी भी आज्ञा का उल्लंघन न करूँगा, आपके आदेशानुसार चलूँगा।

सोना—मैं भी अपने अपराधों की क्षमा माँगती हूँ—अपने किये पर पश्चात्ताप करती हूँ।

माधो—दया कीजिये, पुत्र के रहते दूसरे को धन न दीजिये।

सोहन—अच्छा, यदि मित्र माधो का आग्रह है तो मैं तुम लोगों को क्षमा करता हूँ। जाओ दान-पत्र और एक बत्ती जला कर ले आओ, फिर गुप्त धन पाओ।

भोला—बहुत अच्छा अभी ले आया।

(दोनों का जाना)

माधो—मित्र सोहन! अब शीघ्र चतुरता से अपनी बला को टालो, काँटे को काँटे से निकालो।

सोहन—हाँ भाई! उपाय तो आपने बहुत अच्छा बताया मेरे दुःखों का बेड़ा पार लगाया। अब क्षणमात्र में दानपत्र को जला कर राख करता हूँ—इनके अभिमान का नाश करता हूँ।

माधो—परन्तु सावधानी से। (दोनों का जाना)

भोला—लीजिये, पिता जी! यह दान-पत्र है।

सोना—श्वशुर जी! यह बत्ती जला कर लाई हूँ।

माधो—सोहन भाई! अब वह धन कहाँ है मँगाइये!

सोहन—देखो चूल्हे के पीछे—बायें हाथ ज़मीन खोद कर उस गुप्त धन को निकाल लाओ और इस दानपत्र के साथ अपनाओ।

भोला—अभी खोद कर लाया।

माधो—मित्र! मैं भी घर से होकर आया।

(सबका जाना, सोहन का दानपत्र जला देना, भोला और उसकी स्त्री का हाथ-मुख में कालिख लगाये आना)

सोना—ससुर जी! वहाँ तो कोयलों का ढेर दिखाया!

भोला—पिता ज़ी! धन का तो कहीं पता न चला। हैं! यह क्या? दानपत्र भी जलाया?

सोहन—जैसा तुमने किया वैसा फल पाया।

भोला—हाय! हाय!! मिला धन भी गवाँया और दोनों तरफ़ राख ही राख नज़र आयी!!

गाना—

दोनों—हाय हाय लालच बुरी बलाय—

सोना—जैसी करनी वैसी भरनी जो किया वह पाय। ला०-

भोला—बन के चतुर अब हो गये मूरख, हाथ मले पछताय॥

जो किया०—

धन के बदले कोयला पाया—

सोना—पिता-कष्ट का फल है दिखाया।
भोला—क्षमा करो अपराध मेरा—जो किया०—
सोना—अपने किये का दण्ड मिला है।
भोला—पितृ-श्राप का कोप पड़ा है॥ जैसी०—

(गाते २ सब का जाना)

सरस्वती का मकान।

(सरस्वती का विलाप करते दिखलाई देना)

गाना—

सर०—खेल रही हूँ जीवन का मैं खेल॥ खेल०—
सुख के सूरज डूब गये अब—
दुख के बादल छाय रहे नभ—
विरह की बिजली दमक दमक कर—
करती नभ से मेल॥ खेल०—
वायु कष्ट की चलत वेग से—
विटप-उद्यान जलत है शोक से—
सूख रही है मन की बेल॥ खेल०—

आह! यह संसार एक खिलौना खेलने का स्थान है जहाँ छोटे-बड़े, युवा-वृद्ध सब अपने अपने खेल करते हैं। बालक

का खिलौना खिलौना और माता का खिलौना बालक है। युवा का खिलौना धन है, तो बूढ़े का खिलौना यश है। सभी अपने अपने खेल में लिप्त हैं—एक दिन यह खेल समाप्त हो जायेगा और सब इसमें लीन हो जायेंगे। परमात्मन्! मुझे क्षमा करो। मैं अबोध अबला तेरे खेल को क्या समझ सकती हूँ?

(भोला का आना)

भोला—(आकर) बेटी सरस्वती! इस तरह उदास रहने और विलाप करने से कोई लाभ नहीं।

सर०—दादा जी! अपना भाग्य ही ऐसा है। मैं हज़ार समझाती हूँ, पर यह हृदय नहीं मानता।

भोला०—सत्य है। तेरा ही दोष क्यों दूँ? जिसका स्वामी हत्या करके भागा हो वह स्त्री किस प्रकार धैर्य धर सकती है? आह! जिस दिन मैंने सुना कि भगवान दास ने तुझे लात मारा, मालूम पड़ा कि यह हरी-भरी पृथ्वी सूख कर फूल की भाँति शून्य में झड़ पड़ी। नरक उछल पड़ा—शैतान इस ब्याह को देख कर हँस पड़े।

सर०—दादा जी! पति की लात पतिव्रता की छाती में कौस्तुभ मणि से भी बढ़ कर शोभा देती है। स्वामी की लात तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों कल्पवृक्ष से फूलों की वर्षा हो रही है।

भोला०—यह क्या कहती है? सरस्वती! एक कठोर हृदय निर्दयी के प्रति तू ऐसा कहती है?

सर०—दादा जी! यह उनका नहीं मेरा अपराध है जो मैं

उनके हृदय को कोमल न बना सकी। मेरे भाग्य का दोष है जो मैं उनकी दया न पा सकी।

भोला०—सरस्वती! तू मुझे कहाँ तक बोध देगी? यह शोक इन उपदेशों से बहलाया नहीं जा सकता। मेरा हृदय शोक से विह्वल होकर झरने की भाँति पत्थर फोड़ कर उछल रहा है।

सर०—दादा! विवाहिता स्त्री के लिये—मन्त्र और वेद शास्त्र द्वारा बँधी हुई नारी के लिये अपना नारी कर्त्तव्य पालन करना और दुःख-सुख में धर्म पर दृढ़ रहना ही श्रेय है।

भोला०—विवाह? आह! विवाह एक वह रजिस्ट्री है जिसके द्वारा एक पर दूसरा अधिकार जमा लेता है। एक स्वार्थी कामी पुरुष के हाथ एक सती स्त्री सदैव के लिये बिक जाती है। आह! यह कैसा व्यापार और कैसा इसका नियम है? ज़मींदार की प्रजा ज़मीन छोड़ सकती है—बेंच सकती है, परन्तु एक विवाहिता स्त्री अपनी मृत्यु तक खरीदी हुई दासी की भाँति बँध जाती है। चाहे उसका अनादर करो—पैरों से ठुकराओ, पर वह अपने पति के ध्यान में ही प्राण त्यागना वैकुण्ठ समझती है।

(भगवान दास का आना)

सर०—कौन? स्वामीदेव और इस भेष में?

भोला०—कौन भगवानदास?

भग०—हाँ, दादा जी।

सर०—(चरण पकड़ते हुए) प्राणनाथ! इतने दिनों तक आप कहाँ रहे?

भग०—श्मशानों में, जंगलों में, बीहड़ रास्तों में फिरता रहा। पुलिस मेरा पीछा करती रही और मैं नाम बदल कर कभी वैरागी, कभी कूली भेष से बचता रहा। परन्तु फिर भी बचने का कोई उपाय न देख कर तुम्हारे पास आश्रय की भिक्षा माँगने आया हूँ। क्या दोगी?

सर०—नाथ! आप चाहे जैसे हों मेरे स्वामी हैं—मेरे सिर के छत्र हैं। मैं आपको अभय दूँगी! यह गृह आप.........

भोला०—सरस्वति! सरस्वति!! यह तू क्या कर रही है? यह एक खूनी है—हत्याकारी है।

सर०—दादा जी!

भोला०—बस, चुप रह। यह नारी की हत्या करने वाला है—ऐसे पापिष्ट के लिये यहाँ स्थान नहीं है।

सर०—(हाथ जोड़ कर) दादा जी! आप मेरे लिये......

भोला०—मैं समझ गया, परन्तु यहाँ चोरी-छिप्पा नहीं चल सकता—मैं सीधे मार्ग का पथिक आज स्नेह के वश होकर टेढ़ी राह नहीं चल सकता। मेरा घर हत्याकारों का अड्डा नहीं है। (भगवान दास से) जा, मेरे घर से निकल। ओ स्त्री-घातक! तेरा मुख देखना भी पाप है।

सर०—तो दादा जी, मुझे भी फिर बिदा दीजिये। यह चाहे जैसे हों, मेरे आराध्यदेव हैं—मेरे नाथ हैं।

भोला०—सरस्वति! तू सोचती है कि मैं तुझे प्राणों से अधिक चाहता हूँ, अतः अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो जाऊँगा। नहीं नहीं, मैंने कर्त्तव्य के लिये अपना बहुत कुछ त्याग दिया है। अब यदि तुझे भी छोड़ना पड़ेगा, तो छोड़

दूँगा। यद्यपि तेरे छोड़ने में मेरे अंग शिथिल हो जायँगे—मैं पागल हो जाऊँगा। किन्तु ध्यान रख जब तक मेरा जीवन रहेगा, मैं तबतक अपना कर्त्तव्य अवश्य पालन करूँगा। एक अपराधी हत्याकारी को न्याय के हाथों से बचा कर न्याय की आँखों में धूल न डालूँगा। जा, तुझे भी विदा करता हूँ।

भग०—नहीं नहीं, मैं स्वयम् ही जाता हूँ। जब मैं खुद विपत्ति के लहरों में डूब रहा हूँ तो स्त्री को भी लेकर क्यों डूबूं! मैं पुलिस को आत्मसमर्पण कर दूँगा।

सरस्वती—नाथ! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। जहाँ आप का स्थान होगा वहीं अपना भी मरण जीवन है। आप से प्रथम मेरा जीवन सम्पूर्ण होगा। आज यदि आप ऐश्वर्य के गर्व से गर्वित होकर मुझे ग्रहण करने आते तो मैं दादा जी की आज्ञा की बाट जोहती, परन्तु इस भिक्षुक और निराश्रय अवस्था में मैं एक क्षण के लिये भी आप को छोड़ नहीं सकती।

भोला०—सरस्वति? सरस्वति!! यह श्वेत बाल जिसके ऊपर से साठ वर्ष का आंधी-पानी निकल गया, जिसके भीतर एक स्नेह का सागर लहरा रहा है, इसका ध्यान कर इसे देख!

सरस्वती—दादा जी! क्षमा करेंगे। एक ओर स्नेह है तो दूसरी ओर धर्म है। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। अब मुझे विदा दीजिये। प्रणाम! (दोनों का जाना)

भोला०—गई, नारी कर्त्तव्य के वशीभूत होकर एक खूनी हत्यारे के साथ चली गई। आह! सरस्वती, पुत्री! तू ने मेरे

हृदय को बड़ा भारी आघात पहुँचाया—एक अन्यायी दुष्ट का पक्षपात करके मुझ पर वज्रपात किया। उसने तुझे लात मारी एक स्त्री की हत्या की, फिर भी तू ने उस को ग्रहण किया, आह! मेरा देदीप्यमान गृह अन्धकार मय हो गया।

(दुखित हो कर जाना)

मार्ग।

(कालीदास का विचारते हुए आना)

काली०—सत्य है कि जब मनुष्य धनबल के गर्व से गर्वित हो जाता है, तो उसका विचार और ज्ञान नष्ट हो जाता है। उचित परामर्श का वह उल्टा अर्थ समझता है—विष को अमृत और अमृत को विष कहता है। मैं इतने दिनों तक गौरीनाथ के अत्याचारों को एक दर्शक की भाँति देखता रहा-मित्रता के कारण उसके अन्याय पर भी चुप रहा। किन्तु ऋषि तुल्य भोला नाथ के साथ यह जुआचोरी और अनाथ हीरा पर यह कुठाराघात, अब नहीं देखा जाता है। मेरा हृदय मुझे धिक्कार रहा है, मानवीय कर्त्तव्य मुझे उनकी सहायता करने के लिये विवश

कर रहा है। अब इस विषधर सर्प का मुख अपनी युक्ति से कुचल दूँगा—इसके अन्याय को न्याय से बदल दूँगा।

(माधो का घबराये आना)

माधो—भाई कालीदास! बड़ा अनर्थ हो गया!

काली०—क्यों क्यों? क्या हुआ?

माधो—भोलानाथ की पुत्री सरस्वती और भगवान दास ने पुलिस के हाथ आत्म-समर्पण कर दिया!

काली०—किन्तु सरस्वती को किस अपराध पर पुलिस ने पकड़ लिया?

माधो—इस हेतु कि भगवान दास को बचाने के लिये सरस्वती ने स्वयं हत्या करना स्वीकार कर लिया।

काली०—ओह! यह तो बड़ा ही अन्याय हुआ।

माधो—कालीदास जी! धनवान यह नहीं विचारता कि कभी उसे निर्धनता का दरवाजा खटखटाना होगा। युवा यह नहीं सोचता कि किसी दिन उसे वृद्धा का चरण दबाना होगा। परन्तु समय के परिवर्तन से एक दिन सब की अवस्था बदल जाती है—क्षणमात्र में पत्ते पर पड़े हुए ओस की भाँति ढल जाती है।

काली०—बहुत ठीक है। अच्छा, गौरी और हीरा का कुछ पता चला?

माधो—हाँ, गौरीनाथ अभी अभी हीरा के पीछे-पीछे पास के जंगल की ओर गया है।

काली०—जब तो हम लोगों को शीघ्र पुलिस लेकर वहाँ

पहुँच जाना चाहिये और उस निःसहाय हीरा को गौरी के हाथ से बचाना चाहिये।

माधो—अवश्य पाप के हाथों से धर्म की रक्षा करनी चाहिये।

काली०—तो चलो—विलम्ब न लगाओ—व्यर्थ समय न गवाओ।

(दोनों का जाना)
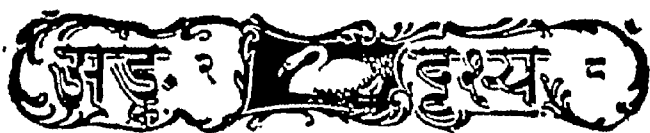
कारागार

(भगवान दास बैठा है सरस्वती सो रही है)

भग०—ऐ नील वर्ण आकाश! ऐ हरीभरी पृथ्वी! अपने मुंख ढक लो—अपने कानो को बन्द कर लो। कल तुम्हारे उदर पर एक नवयुवक का रक्त बहाया जायेगा। मृत्यु-देवता पर एक तरुण बलिदान चढाया जायेगा। वसुन्धरे! मुझ घृणित अभागे का अपराध क्षमा करो। मेरी तरुणाई और युवावस्था पर दया करो। यह अपराधी आज तुमसे अपने जीवन की भिक्षा मांगता है-मृत्यु की भयंकर यातना से अपनी जवानी की रक्षा चाहता है। मातेश्वरी! जब यह मनुष्य जाति रहेगी, यह

सृष्टि रहेगी और उसका अनुपम दृश्य भी रहेगा तब मुझे भी अपनी शरण में रख लो। मुझ आशायुक्त बल और शक्ति रखते हुये युवक को अपने पाप के प्रायश्चित्त करने का अवकाश दो। मेरी आयु पर मृत्यु गरज रही है—जवानी पर वज्राघात हो रहा है। माता! मेरी वेदना के धड़कन को थाम लो। (सरस्वती का जागना)

सर०—प्राणनाथ! आप इस प्रकार भयभीत होकर क्यों विलाप कर रहे हैं? दासी ने जब स्वयं हत्या करना स्वीकार कर लिया है तब आप क्यों डर रहे हैं?

भग०—प्रिये! इस अवस्था में संसार का भोग, त्याग, और मृत्यु का दंड यह सब बातें मेरे हृदय को टुकड़े २ कर रही हैं।

सर०—परन्तु मेरे रहते आप पर मृत्यु की छाया भी नहीं आ सकती।

भग०—तो क्या अदालत में भी तुम यहाँ की भाँति स्वयं हत्या करना स्वीकार करोगी?

सर०—स्वीकार करना कैसा! मैंने तो स्वीकार कर लिया है। वहाँ भी यही कहूँगी जो यहाँ कहा है।

भग०—परन्तु ऐसा तुम क्यों कर रही हो? क्यों अपराध का मिथ्या दोष अपने सर ले रही हो?

सर०—नाथ! जो यहाँ आया है वह अवश्य जायेगा। परंतु धन्य है वही सैनिक जो दृढ़ संकल्प से अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ रहते हैं! युद्ध की भेरी बजते ही तलवारों की बाढ़ पर

अपनी जान दे देते हैं। आज सरस्वती भी अपने कर्त्तव्य के डंके का गम्भीर आवाहन सुनकर निःशंक-चित्त से मरने को तैयार है। स्त्री के रहते स्वामी पर आंच आये तो ऐसी नारी को धिक्कार है !

भग०—प्रिये ! यह क्या कहती हो ? मुझ अपराधी के कारण आज तुम आत्मसमर्पण कर रही हो ? मैंने तुम्हें गालियाँ दी लात मारा और तुम मेरे लिये मृत्यु के मुख में जा रही हो !

सर०—प्रभो ! मृत्यु एक दिन सभी के लिये है। चाहे डूब कर मरना हो, जलकर मरना हो, चाहे रोग में कष्ट भोग २ कर मरना हो, पर एक दिन मरना ही इस जीवन का मुख्य ध्येय है। अत. इस मृत्यु की अपेक्षा हँस हँस कर मृत्यु को गले लगाना अपने स्वामी पर निछावर हो जाना बड़ाही सुखद है।

भग०—मुझ निन्दित और कलुषित पति के लिये ?

सर०—यह आप क्या कहते हैं ? स्त्री के लिये पति चाहे कैसा ही हो—बुरा से बुरा हृदय रखता हो, पर सती को इसके प्रश्न की आवश्यकता नहीं।

भग०—परन्तु पति भी तो इस प्रश्न का विचारक हो।

सर०—यह पति का कर्त्तव्य है। मुझे इन बातों से प्रयो· जन नहीं। मेरी अन्तिम प्रार्थना आप से यही है कि नाथ ! अब भी समय है अपने को सुधारने की चेष्टा करें। अपने भीषण भविष्य का ध्यान करें।

भग०—परमात्मन् ! परमात्मन् !! मुझे क्षमा कर ! एक बार मुझे और मेरी स्त्री को बचाकर मुझे सुयोग दे कि मैं अपनी गृहस्थी सम्हालूँ और इस सती का आदर करूँ।

सकता हूँ, कि तू सीता-देवी की तरह अग्नि-परीक्षा होने पर भी निर्दोष है।

सर०—परन्तु मैं स्वीकार करती हूँ तो वे लोग क्या करेंगे।

भोला०—क्या करेंगे? क्या गवाही मिलने से ही यह सिद्ध हो गया कि चन्द्रमा जलाता है—अग्नि शीतल करती है—वायु स्थिर है, पर्वत चञ्चल है? इस शान्त सजल-दृष्टि में विष मिला है? इस मृदु हँसी के नीचे छूरा छिपा है? नहीं कभी नहीं। वे मूर्ख हैं—वे अन्धे हैं।

सर०—जो होना था वह हो गया। दादा जी! अब मेरा न्याय केवल फाँसी है।

भोला०—आह भगवन्! पृथ्वी आज अपना एक श्रेष्ट रत्न स्वर्ग को देना चाहती है। पर मैं जला जा रहा हूँ—मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।

सर०—दादा जी! बिछुड़ना एक दिन निश्चय है। जो स्नेह आपने मुझे दिया था, उसे लौटा कर सम्पूर्ण विश्व को बांट दीजिये। अपने अपार कर्त्तव्य ज्ञान और स्नेह के साथ अतुल सहनशीलता को मिला दीजिये—दुख न कीजिये।

भोला०—भगवान! भगवान!! तू ने मुझे हर प्रकार से शिथिल कर दिया। अब मैं कहाँ जाऊँ—किसका द्वार खट-खटाऊँ? प्रभो! मेरा सर्वस्व हरण हो जाय, परन्तु मेरी पुत्री मुझसे न बिछुड़ने पाये।

दीना०—भोलानाथ जी! धैर्य धरिये—चलिये घर चलिये।

भोला०—दीनानाथ! मैं गली गली भीख माँगूँगा—अपना शरीर बेच डालूँगा, परन्तु अपनी पुत्री को बचाऊँगा।

प्रेम०—आप यों अधीर न हूजिये—अभी समय है। न्यायालय में मैं पूरा प्रबन्ध करूँगा।

सर०—दादा जी! घर जाइये, विलाप न कीजिये—मुझे मेरी मुक्ति के लिये आशीर्वाद दीजिये।

भोला०—आह! मेरी पुत्री!! मेरी बेटी!!! मेरे हृदय की प्रतिमा!!!!

(सब भोलानाथ को पकड़ कर ले जाते हैं)

भग०—थूको, ऐ संसार के पुरुषो! मुझ पर और मेरे कर्त्तव्य पर थूको! मैंने एक सती की कोख से जन्म पाया—आदर्श परिवार में पला—सतसग में खेला, परन्तु फिर भी कुकर्म में पड़ कर अपना सर्वनाश कर डाला। माता को दुर्वचन कहे—परोपकारी श्वशुर का हृदय तोड़ा और अपनी सती स्त्री को लात मारा। आह! अब मुझ नीच को नरक में भी स्थान नहीं मिल सकता।

(विलाप)

भोलानाथ का मकान।

(भोलानाथ, प्रेमशंकर और दीनानाथ)

भोला०—आह! क्या मनुष्य इतना अकृतज्ञ, इतना कृतघ्न बन जायेगा? प्रेमशंकर! यह तुम क्या कहते हो? जगत् में प्रत्युपकार नहीं है? उपकार का बदला .....

प्रेम०—केवल गाली-गलौज है। वे लोग स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कैसा रुपया? कब दिया था?

भोला०—क्या इस विपत्ति में भी वे लोग शरीक न होंगे? मेरी मुसीवत में भी हाथ न बटायेंगे?

प्रेम०—मैं प्रथम ही आप को मना करता था, पर आपने दोनों हाथों धन लुटाया। श्रीमन्! आप मनुष्य को नहीं पहचानते हैं—इसी से उपकार का बदला पाने की आशा करते हैं।

भोला०—प्रेमशंकर! मैंने जब उपकार किया था तब सोचा था इसका बदला नहीं लूंगा, परन्तु इस विपद् के समय बिना एक हज़ार रुपये के काम नहीं चल सकता—मर्यादा नहीं बच सकती। क्या कोई उधार भी न देगा?

प्रेम०—मनुष्य अधम है। जितना उपकार करो उतना ही वे समझते हैं कि आप उपकार के लिये बाध्य हैं और आगे

यदि आप उपकार न कर सके तो गालियाँ सुनने को मिलेंगी आजन्म के लिये उन से शत्रुता होगी।

भोला०—नहीं-नहीं, प्रेम! मनुष्य इतना नीच नहीं हो सकता। तुम उनसे फिर कहो—मेरी ओर से प्रार्थना करो।

प्रेम०—आपको विश्वास नहीं है, तो मैं किसी को आपके सम्मुख बुला लाता हूँ।

(जाना)

भोला०—आह! पुत्री सरस्वती जेल में पड़ी है। मैं उसको बचाने के लिये द्वार द्वार भिक्षा मांग रहा हूँ, परन्तु कोई ज़रा भी कान नहीं दे रहा है! जिसके लिये मैंने अपना सर्वस्व अर्पण किया, आज फकीर बन गया, वह भी मुख फिरा रहा है!!

(शिवदयाल और प्रेमशंकर का बातें करते आना)

प्रेम०—शिवदयाल जी! आपने अपनी कन्या के विवाह में यहाँ से चार हज़ार रुपये लिये थे—इस समय मालिक को बड़ी आवश्यकता आ पड़ी है—कृपया उसे दे देवें।

शिव०—मैंने और रुपये लिये थे! महाशय! अपने होश की दवा कीजिये—तनिक कहते हुये लजाइये।

भोला०—नहीं, भाई! नहीं। तुम्हें मेरा कुछ नहीं देना है। मैं इस समय बड़े विपद् में हूँ—मुझे अपना रुपया समझ कर उधार दो—मैं भीख मांगता हूँ—मुझे एक हज़ार रुपये दान दो।

शिव०—मेरे पास ऐसा फ़ालतू रुपया नहीं है। दान मूर्ख लोग करते हैं—वे बेवकूफ हैं—जो दान देने को कहते हैं।

भोला०—शिवदयाल जी! तुम्हारा कहना सत्य है। इस

वर्त्तमान समय में अपना देकर ही लोग मूर्ख बनते हैं, परन्तु फिर भी मेरी विपद् पर ध्यान देना चाहिये।

शिव०—भोलानाथ! विपद् और आराम का झगड़ा तो सदैव लगा रहता है। परन्तु मनुष्य प्रथम अपने गृह में दीपक जला लेता है तब मन्दिर में जलाने चलता है।

भोला०—भाई, शिवदयाल! ऐसा न कहो।

शिव०—न कहूँ? क्या कोई ऋण दिया है? कोई तमस्सुक मैंने लिखा है जो कहने में लजाऊँ?

भोला०—वह तो परमात्मा जाने, परन्तु भाई, मनुष्य के निकट मनुष्य अवश्य ऋणी है। कोई उस ऋण को स्वीकार करता है, कोई नहीं करता है।

शिव०—किन्तु ऋण देने वाला भी देने के प्रथम स्टैम्प पर हस्ताक्षर करा लेता है—कोई मुफ्त उठा कर नहीं दे देता है।

भोला०—सत्य है। यह सब दोष मेरा है—मेरे विश्वास और स्नेह का प्रतिफल है जो अपना देकर आज कंगाल की तरह हरेक के आगे हाथ फैलाये भीख माँग रहा हूँ।

शिव०—मुझे इन व्यर्थ की बातों के सुनने का अवकाश नहीं है।

(चला जाता है)

प्रेम०—श्रीमन्! मनुष्य की नीचता देखी आपने? कितनी ढिठाई और निर्भयता से बातें करता था?

भोला०—आह! अब मैं क्या करूँ? किस से कहूँ? कुछ समझ में नहीं आता है—सिर घूम रहा है—आँखों के नीचे

अँधेरा छा रहा है। ईश्वर! ईश्वर!! रुपये न मिले, भूखों मर जाऊँ, सरस्वती जेल में मर जाये, परन्तु मनुष्य पर आप— पर मेरा विश्वास अटल रहे।

दीना०—भोलानाथ जी! अधीर न हूजिये वह परमात्मा कोई न कोई प्रबन्ध अवश्य करेगा।

भोला०—प्रेमशंकर अब क्या होगा? देखो, गौरीनाथ से कहो, उसने जमींदारी ख़रीदी है—मुझे कंगाल और भिक्षुक बनाया है। अतः उससे प्रार्थना करो, भिक्षा माँगो।

प्रेम०—श्रीमन्! उसने तो मुझे प्रथम ही धतकार बतलाई। ऋण और भिक्षा देने के बदले आपको गालियाँ सुनाईं।

भोला०—गालियाँ सुनाईं? हे परमात्मन्! यह क्या हो रहा है? जो सृष्टि इतनी सुन्दर है, उसका सब से श्रेष्ट जीव मनुष्य इतना कुत्सित हो जायेगा? इस प्रकार निष्ठुर और घृणित बन जायेगा? भगवन्! भगवन्!! मेरा सब कुछ हर ले—मुझे भयंकर से भयंकर मृत्यु दे, परन्तु मेरी पुत्री को क़ैद से छुड़ा ले।

दीना०—भोलानाथ जी! विलाप कर हृदय को विचलित न कीजिये—दुःख में पागल न हूजिये।

भोला०—आह! वह सोने की प्रतिमा साक्षात् लक्ष्मी! मेरे शरीर की शक्ति—मेरी आँखों की ज्योति मृत्यु के भयंकर अग्नि में जल रही है—मुझे छोड़ कर दुःख के महासागर में डूबने जा रही है। नहीं, नहीं, मैं न जाने दूँगा—मैं अपना जीवन दे दूँगा, पर उसे डूबने न दूँगा। हा! रुपया, रुपया!!

प्रेम०—परमात्मन् ! इन्हें धैर्य प्रदान कर—इनके दुःखों का बेड़ा पार कर !

भोला०—परमात्मन्! परमात्मन् कहाँ है? किधर है? बताओ बताओ मैं अपने रक्त की नदी बहाऊँगा—अपनी पलकों को बिछाऊँगा और उसके पास जाऊँगा। अपनी हड्डी से उसका द्वार खटखटाऊँगा—अपनी करुणा से उसे जगाऊँगा और अपनी नखों से हृदय चीर कर उसे दिखाऊँगा। दया दी तो उसमें क्रूरता क्यों दी? उपकार दी तो कृतघ्नता क्यों दी? प्रेम दिया, तो घृणा क्यों दी? ममता दिया, तो विछोह क्यों दी? वह देखो! आकाश में नक्षत्र हिल रहे हैं—चन्द्रमा अग्नि वर्षा कर रहा है—वायु का स्तम्भन हो गया! पृथ्वी पैर के नीचे से भागी जा रही है। भागो! भागो!! तुम सब भी भागो—मैं भी भागता हूँ।

(पागल वेश में भागना)

जंगल-मार्ग

(कोतवाल और कालीदास तथा माधो इत्यादि का आना)

कोत०—क्या तुमने अपनी आँखों देखा कि गौरीनाथ हीरा के पीछे इधर आया है ?

माधो—जी हाँ, अपनी और कालीदास दोनों की आँखों से।

काली०—महाशय ! मैंने तो आपसे थाने में ही सब वृत्तान्त सुना दिया—उसके अन्याय का कारण बता दिया।

कोत०—हाँ, वह तो मैं सब बातें समझ गया, परन्तु वह इधर आकर कहां छिप गया ?

माधो—(स्वगत) कदाचित् चूहा बनकर बिल में घुस गया।

कोत०—ओह ! संसार में अब कैसे कैसे घृणित और दुष्ट मनुष्य हो गये हैं—मानो नीचता के पुतला बन गये हैं। एक अबोध अबला के सतीत्व पर डाका डालना—उसका सर्वस्व हरण कर उसे ठोकर मारना और फिर यह नीचता कि उस निस्सहाय का रक्तपात करना ?

माधो—श्रीमन् ! आज यदि बृटिश का राज्य न जगमगाता तो दिन दोपहर मनुष्य मनुष्य को खा जाता।

कोत०—क्या बकते हो ? इस राज्य में सिंह और बकरी

को एक घाट पानी पिलाया जाता है। सत्य असत्य का यथार्थ न्याय चुकाया जाता है।

माधो—(स्वगत) इसका तो प्रत्यक्ष प्रमाण न्यायालय में पाया जाता है, कि भूतों की फीस से ही मुवक्किल अधमरा हो जाता है।

कोत०—कालीदास ! देखो, तुम मुखविर हो, यदि सरकार का व्यर्थ समय नष्ट करोगे, तो गौरी के बदले तुम्हीं दंडित होगे।

माधो—(स्वगत) लो भाई ! होम करते हाथ जलता है। सच है इसी से कोई किसी का गवाह नहीं बनता है। सत्य हो या असत्य भला आदमी अदालत के नाम से डरता है।

काली०—महाशय ! मुझे सत्कार्य में ज़रा भी भय नहीं है—मैंने जो जो अपने कानों सुनी है—अपनी आँखों देखा है वही बात कहा है।

कोत०—तो हीरा का रक्तपात करने के लिये गौरी का पीछा करना सही है ?

काली०—सही और बिल्कुल सही है।

कोत०—अच्छा, तो चलो आगे बढो—उसका पता लगाओ। गजाधर सिंह ! तुम लोग उस ओर से गश्त लगाते हुए आओ।

काली०—आइये, वह अवश्य इसी ओर किसी तरफ़ छिपा होगा।

(लोगों का चारों तरफ़ जाना—गौरी का हीरा को पकड़े हुए लाना)

हीरा—अरे निर्दयी! छोड़। अन्यायी, कसाई, एक गौ का वध न कर—अत्याचारी! एक निस्सहाया अबला की आह से डर!

गौरी०—पापिन्! दुष्टा!! तू ने ही संसार में मुझे निन्दनीय और दोषी किया है। तू ने ही मेरा अपमान कर मुझे घृणा के योग्य बना दिया है।

हीरा—मैंने?

गौरी०—हाँ तूने। तेरी जिह्वा ने—और जिह्वा से निकले हुए घृणायुक्त शब्दों ने।

हीरा—नहीं, यह जिह्वा तो सदैव से तेरी सेवा में लगी रही। तेरे मुख की बाट जोहती रही, परन्तु ओ निष्ठुर! तूने ही मेरा सर्वस्व हरण कर मुझे ठोकर मारा। मेरा सर्वनाश कर मुझे राह की भिखारिन बना डाला।

गौरी०—मूर्खा! वह समय याद है जब तू मुन्नी वेश्या के सामने अपने तिरस्कृत शब्दों से मेरा अनादर कर रही थी—मुझे दगाबाज़, नराधम कह रही थी?

हीरा—हाँ, याद है। मैं अब भी कहती हूँ कि अपने कुकर्मों को त्याग—पाप के मार्ग से भाग। तेरे अत्याचार का घड़ा तेरे पापों से भर गया है, जो कि किसी क्षण में ढलकने वाला है।

गौरी०—ढलकने दे। उसके ढलकने से पहले मैं तुझे मिटाऊँगा—तेरे रक्त से अपने अपमान का बदला चुकाऊँगा। तेरे उन अपशब्दों का अर्थ तेरे शरीर से लूँगा—तेरे उन कुवाक्यों का लेख तेरे ही रक्त से लिखूँगा।

हीरा—इन्हीं हाथों से ?

गौरी०—यह लोहे के हैं।

हीरा—इसी हृदय से ?

गौरी०—यह पत्थर का है।

हीरा—न्यायालय का दण्ड ?

गौरी०—कोई गवाह नहीं है।

हीरा—पुलिस का अनुसन्धान ?

गौरी०—रिश्वत से काम लूँगा।

हीरा—तो मैं अपने आर्त्तनाद से लोगो को बुलाऊँगी।

गौरी०—यह एक निर्जन वन है।

हीरा—मैं इसे अपनी पुकार से विकम्पित कर दूँगी।

गौरी०—पुकारने से प्रथम तू मृत्यु के मुख में होगी।

हीरा—तो मेरी आत्मा तेरी पाप-कथा न्यायालय में पहुँचायेगी और तुझसे तेरे अन्याय का बदला चुकायेगी। धाओ धाओ! ऐ वन-मार्ग के वृक्ष और पशुओ! तुम्हीं सब मेरी सहायता को धाओ! एक निस्सहाय अबला को अत्याचारी के हाथों से बचाओ!

गौरी०—बस, शोर न मचा। चुप हो जा।

(पिस्तौल मारता है)

हीरा—आह, परमात्मन्! न्याय!!

(पुलिस वगैरह का आना)

काली०—ओ हत्याकारी! तू भी अपने किये का फल पा।

कोत०—बाँध लो इस अपराधी को—जाने न पाये।

माधो—रक्तपात हो चुका, तो पुलिस वाले रंग जमाने आये।

गौरी०—कौन? माधो और कालीदास! मित्र के वेष में शत्रु?

काली०—ओ मनुष्य-वेष में शैतान! हम तेरे शत्रु हैं या मित्र, देख, अच्छी तरह पहचान!

(गौरी का क्रोध से देखना—पुलिस का बाँधना)

ड्राप—सीन

जंगल।

(भोलानाथ का पागल के वेश में प्रवेश)

भोला०—मेघो! रक्त की वर्षा करो। हवा भीम वेग से गरज उठ। समुद्र! अग्निमय हो जा। पृथ्वी! तू फट जा और यह समस्त ससार उसमें समा जाये। यह प्रकाशमान चन्द्र और सूर्य निस्तेज हो जायें। पृथ्वी की श्याम शोभा धूम-केतु के सघर्ष से विध्वंस हो जाये। वह देखो, वह देखो! प्रेम को काम-वासना खा रही है—बन्धुत्व के ऊपर ईर्ष्या राज्य कर रही है। उपकार के सिरहाने कृतघ्नता पहरा

दे रही है। आहार में विष है—शरीर में व्याधि है। ऐश्वर्य में अहङ्कार है—दारिद्रय में घृणा है। प्रेम, दया, स्नेह, पातिव्रत, वात्सल्य सब पृथ्वी से भागे जा रहे हैं।

प्रेमशंकर—(आकर) श्रीमन्! ममता की ज्वाला में जीवन की आहुति न दीजिये—चलिये घर चलिये।

भोला०—जाओ, भाग जाओ, त्याग दो। पृथ्वी यदि रहे तो उस पर से मनुष्य जाति लुप्त हो जाये, और यदि मनुष्य रहें तो केवल चोर, लम्पट और धोखेबाज़। दया का गला घोंट दो, उदारता की जिह्वा काट लो, स्नेह के नेत्र फोड़ दो, प्रेम का हृदय कुचल दो।

प्रेम०—हे भगवन्! एक दयावान उदार पुरुष की यह दशा!

भोला०—वह देखो, वह देखो। दया को निष्ठुरता मार रही है-स्नेह को विछोह पददलित कर रहा है। उपकार का कृतघ्नता रक्तपात कर रही है। छोड़ दे, छोड़ दे, ओ अन्यायी, निष्ठुर! यह मनुष्य के अंग हैं (ठहर कर) क्या कहता है? क्या मनुष्य अकृतज्ञ है? धोखेबाज़ है? कपट, छल उसका कर्त्तव्य है?

दीना०—श्रीमन्! रात अधिक बीत गई; आइये, गृह में चलिये।

(हाथ पकड़ता है)

भोला०—हट जाओ—हट जाओ, मुझे स्पर्श न करो। तुम मनुष्य-वेश में चोर हो, लम्पट हो, ठग हो। तुम्हारे शरीर से तो स्वार्थ की दुर्गन्ध निकल रही है—तुम्हारे मुख से कृतघ्नता की वास आ रही है।

दीना०—श्रीमन्! मैं हूं आपका सेवक दीननाथ।

भोला०—हैं ! तुम दीनानाथ हो ? जावो जावो, ओ स्नेहमय बन्धु ! तुम भी जाओ। जिस पृथ्वी पर दया भिक्षुक है, उपकार सताया जा रहा है, स्नेह को लात मारी जा रही है; वहाँ से तुम भी चले जाओ। सब चोर हैं—धोखेबाज़ हैं।

दीना०—वह ईश्वर हमारे कष्टों का विनाश करेगा। आप धैर्य धरें—घर को चलें।

भोला०—ईश्वर ? ईश्वर का नाम न लो। उसने सन्तान को विष पान कराया है, सन्तान मृत्यु की यंत्रणा से छटपटा रही है और वह मुस्कुरा रहा है।

दीना०—श्रीमन् ! फिर किसे पुकारूँ ? कौन हमारा रक्षक है ?

भोला०—सत्य है. तुम्हारा कथन सत्य है। वही संसार का रक्षक और भक्षक है। उसे छोड कर कहाँ जाऊँ ? किसे अपनी व्यथा सुनाऊँ ? किन्तु दीनानाथ ! मेरे हृदय की अधीश्वरी—स्नेहमयी सरस्वती ने आत्म-समर्पण कर दिया।

दीना०—उसने नारी-कर्तव्य का पालन किया है। आज हिन्दुओं के प्रत्येक घर में सावित्री की पूजा होती है, किन्तु हमारे घर में भी सावित्री सरीखी देवियाँ मौजूद हैं, इसका ज्वलन्त उदाहरण उसने हमें दिखा दिया।

भोला०—सत्य है, सरस्वती ने स्वामी के प्राण बचाने के लिये अपने ऊपर अभियोग लगाया है। वह देखो, वह देखो, यम के दूत भयानक स्वरूप में लाल लाल आँखें किये हुये, सरस्वती को पकडे लिए जा रहे हैं। छोड़ दो, ओ राक्षसो ! मेरी पुत्री को छोड़ दो, नहीं तो ....

प्रेम०—हैं! फिर वही उन्माद का वेग! भ्रमित चित्त रह रह कर चञ्चल हो जाता है।

भोला०—वह सुनो, वह सुनो, न्यायाधीश ने उसे फांसी की आज्ञा सुना दी। देखो, देखो! कर्मचारियों ने रस्सी का फन्दा गले में डाल कर उसे फांसी दे दी। पुत्री की स्नेह सजल आँखें आकाश की ओर निहारती रह गईं। उसकी सुकोमल देह सूखी लकडी की भाँति सख्त और निश्चेष्ट हो गयी। हाय! उसके शरीर से निकली हुयी ज्योतिर्मयी आत्मा स्वर्ग को चली गई।

दीना०—श्रीमन्! अपने शंकित चित्त को धैर्य दीजिये, भ्रम में पड़ कर व्यर्थ बातों की कल्पना न कीजिए। यह मन की भ्रान्ति है जो अघटित घटना का दृश्य आँखों दिखा रही है। आप के हृदय को निर्बल बना रही है।

भोला०—देख देख ओ मनुष्य की कृतघ्नता! इस दृश्य को देख! बिजलियों की कड़कड़ाहट! इस रुदन को रोक दे। रक्तपात! इस सुन्दर ध्वंश को डुबा दे!

दीना०—आह! एक बार यह चिन्ता, एक बार वह चिन्ता इनके मस्तिष्क को चूर चूर कर रही है। इनकी ज्ञान-शक्ति का नाश कर इन्हें संज्ञाहीन बना रही है।

भोला०—समुद्र! उमड़ आ और संसार को जलामय कर दे। मेघो! इतनी व्यग्रता से बरसो कि पर्वतों की चोटियाँ तक ढक जाये। पर्वतो! आपस में टकराकर संसार को मटियामेट कर दो। वह देखो! वह देखो!! वृक्षों से ज्वाला

प्रगट हो गयी और समस्त ब्रह्माण्ड को जला रही है। आह! मैं भी जला! मेरे रोम रोम से आग की चिनगारी निकल कर मुझे भस्मीभूत कर रही है। देखो! देखो!! सरस्वती का गला काटने के लिये जल्लाद छुरी को तेज कर रहा है। ओ राक्षस! मेरे ही सामने मेरी प्यारी पुत्री का वध करना चाहता है! ठहर जा, ठहर जा। चाण्डाल! मैं अपने नखों से तेरे.....

(चले जाना, पीछे पीछे दीनानाथ और प्रेमशंकर का जाना)

न्यायालय।

(अपने अपने स्थान पर वकील, बैरिष्टर, पेशकार इत्यादि बैठे हैं। जज का आना और उसके बाद कोतवाल का दो सिपाहियों के साथ गौरीनाथ को लाना)

सरकारी वकील—श्रीमन्! खूनी गौरी कुछ दिन हुए हीरा नाम की स्त्री को प्रलोभन देकर घर से निकाल लाया और कुछ दिन भोग-विलास करने के पश्चात् उसका सर्वस्व हरण कर उसे घर से निकाल दिया। हीरा ने अपने इस तिरस्कार की वेदना से विह्वल होकर गौरी को धिक्कारा और परमात्मा के कोप का भय दिखलाया। गौरी उसकी इस

करतूत पर बड़ा क्रोधित हुआ और एक निर्जन बन में अकेली पाकर उसको मार डाला। शहर कोतवाल ने मुखविर काली-दास से सूचना पाकर घटना-स्थल पर जाकर उसे गिरफ्तार किया।

जज—कालीदास मुखबिर को हाज़िर करो।

पेश्कार—(चपरासी से) कालीदास को पुकारो।

चपरासी—कालीदास हाज़िर है ? कालीदास !

कालीदास—(आकर) हाजिर।

पेश०—तुम्हारा नाम ?

काली०—कालीदास।

पेश०—बाप का नाम ?

काली०—भवानी दास।

पेश०—ज़ात ?

काली०—ब्राह्मण।

पेश०—पेशा ?

काली०—पाठपूजा।

जज—तुम गौरी को जानते हो ?

काली०—जी हाँ। वह मेरे पड़ोस का रहने वाला है।

जज—तुमने इस हत्या का भेद कैसे जान लिया जो पुलिस को सूचना दी ?

काली०—एक दिन गौरी और हीरा से मुन्नी वेश्या के मकान पर बहुत कहा सुनी हुई और उसी समय गौरी हीरा को अपने क्रोध का आखेट बनाना चाहता था, परन्तु हम और माधो ने उस समय गौरी को समझा बुझाकर हीरा को बचा दिया।

जज—फिर ?

काली०—फिर दूसरे दिन गौरी के इस प्रस्ताव पर कि हीरा को मार डालना चाहिए, हम लोगों ने बहुत कुछ समझाया, परन्तु गौरी ने एक न माना। वरं हीरा का रक्तपात करना उसने निश्चय कर लिया और हम लोगों से भी विमुख हो गया। अस्तु, हम लोग पुलिस को लेकर घटना-स्थल पर पहुंचे, परन्तु पहुंचते पहुंचते उसने हीरा को अपनी पिस्तौल का निशाना बनाया।

जज—जाओ। माधो को हाज़िर करो।

पेश०—(चपरासी से) माधो गवाह हाज़िर है ?

माधो—(आकर) हाज़िर।

चप०—चलो, जल्दी आओ।

माधो—क्या सर पर पांव रख कर आऊँ ? या दौड़ते दौड़ते मर जाऊँ ?

चप०—आहिस्ता बोलो।

माधो—तो क्या गूंगा बन जाऊँ ?

(इजलास के पास जाकर खड़ा होता है)

पेश०—तुम्हारा नाम ?

माधो—माधो।

पेश०—बाप का नाम ?

माधो—माधो वल्द साधो।

पेश०—क़ौम ?

माधो—हलवाई।

पेश०—पेशा ?

माधो—गवाही।

पेश०—गवाही क्या?

माधो—सरकार में गवाही करने आया हूँ।

पेश०—अजी! मैं पूछता हूँ कौन सा रोज़गार करते हो?

माधो—तेल की मिठाई बेंचते हैं।

जज—गौरी और हीरा के सम्बन्ध में क्या जानते हो?

माधो—वही जो कालीदास ने कहा है।

जज—कालीदास का बच्चा! तुमने क्या देखा?

माधो—सरकार! मैंने देखा कि एक धडाके से पिस्तौल की आवाज़ हुई और हीरा हाय हाय करती हुई टें बोल गई। फिर कोतवाल साहब ने हाँ में हाँ मिला दिया और हम लोगों ने गौरी को बाँध लिया।

जज—गौरी ने हीरा को क्यों मारा?

माधो—हीरा गौरी की प्रेमिका थी। जब गौरी ने हीरा का सर्वनाश कर उसे घर से निकाल दिया, तो हीरा ने वेश्या के मकान पर उसका अपमान किया। इसी अपमान के कारण दोनों में शत्रुता हुई और हीरा टें बोल गई।

जज—अच्छा, जाओ।

माधो—(स्वगत) चलो, जान बची लाखों पाया। यह पाप का प्रायश्चित्त था जो अदालत में आया।

जज—गौरीनाथ! तुमको कुछ कहना है?

गौरी०—कुछ नहीं।

जज—तुमने हीरा का खून किया?

गौरी०—हाँ।
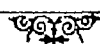
जज—अदालत तुमको इस अपराध में आजन्म कालापानी का दण्ड देती है।

गौरी०—कोई चिन्ता नहीं।

(पुलिस का गौरी को ले जाना)

पेश०—(चपरासी से) भगवानदास और सरस्वती को हाजिर करो।

(पुलिस भगवानदास और सरस्वती को लेकर कठघरे में खड़ी होती है—
दीनानाथ, प्रेमशकर आकर बगल में खडे होते हैं।)

सरकारी वकील—श्रीमन्! इस असामी के विरुद्ध यह प्रमाण है, कि असामी से और मुन्नी वेश्या से कहा सुनी हुई, उसके बाद एक पिस्तौल की आवाज़ सुनाई पडी। पडोसियों ने घर में प्रवेश कर देखा, तो मुन्नी खून में लथफथ और असामी की स्त्री एक ओर पृथ्वी पर मूर्छित पडी है। यह सब बातें पड़ोसियों की गवाही से प्रमाणित हो गई हैं। पुलिस ने मौके पर पहुँच कर देखा कि लाश घर में नहीं है। ज्ञात होता है कि पुलिस को सूचना पहुँचते पहुँचते लाश किसी ने वहां से हटा दी। यद्यपि यह अभी तक साबित नहीं हुआ कि लाश किसने हटाई और कहां छिपा दी गई है, परन्तु यह प्रमाण भी काफी है कि यह पिस्तौल असामी भगवानदास की है और उसी समय स असामी भागा भागा फिरता रहा।

जज—जिस समय यह झगड़ा हुआ था, उस समय उस स्थान पर कौन कौन था?

वकील—असामी—भगवानदास, उसकी स्त्री सरस्वती और मुन्नी वेश्या।

जज—भगवानदास ! तुम कुछ कहना चाहते हो ?

भग०—श्रीमन् ! मैं निरपराधी हूँ—मैंने हत्या नहीं की।

जज—फिर किसने हत्या की ?

भग०—मेरी स्त्री ने।

जज—सरस्वति ! भगवानदास कहता है, कि हत्या तुमने की है।

सरस्वती—धर्मावतार ! उनका कथन सत्य है—हत्या मैंने ही की है।

वकील—अदालत को यह बात विचारणीय है, कि एक स्त्री, हत्या करके अपने स्वामी को पिस्तौल दे दे और मूर्च्छित हो जाये ! और यदि सरस्वती हत्या करती, तो भगवानदास क्यों भागा भागा फिरता ?

सर०—वकील साहब ! इसमें अविश्वास का कोई कारण नहीं है।

वकील—क्यों नहीं ? झगड़ा मुन्नी और भगवान दास से हुआ और पड़ोसियों की गवाही से प्रमाणित हुआ, कि पिस्तौल भगवानदास के हाथ में थी, फिर तुम हत्याकारिणी कैसी !

सर०—मुन्नी वेश्या मेरे स्वामी के पास नौकर थी, इसी डाह से मैंने उसकी हत्या की। हत्या करते ही मैं भयसे मूर्च्छित हो गई। सम्भव है, कि पिस्तौल मेरे हाथ से गिर गई हो और मेरे स्वामी ने उसे उठा लिया हो।

जज—वकील साहब ! क्या यह बात सम्भव नहीं ?

वकील—हो सकता है।
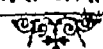
सर०—वकील साहब ! आपका कथन है, कि घटनास्थल पर हम तीन ही मनुष्य थे। जिसमें मुन्नी की हत्या हुई और हम दोनों में एक मनुष्य अवश्य हत्याकारो है। मेरे स्वामी उस हत्या को अस्वोकार करते हैं और मैं स्वीकार करती हूँ।

जज—तो तुमने ही मुन्नी की हत्या की ?

सर०—जी हाँ। एक विवाहिता स्त्री अपने पति को पर स्त्रीगमन में कदापि नहीं देख सकती।

जज—तो तुमको मुन्नी वेश्या की हत्या के अभियोग में ·

मुन्नी—(आकर) ठहरिये। एक निरपराध को आज्ञा सुनाने के प्रथम मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये।

जज—हैं ! तुम कौन ?

मुन्नी—(नकाब हटा कर) मुन्नी वेश्या।

पेश०—कौन ? मुन्नी !!!

जज—मुन्नी ! तुम जीवित, यह कैसे ? यह क्या रहस्य है ?

मुन्नी—श्रीमन् ! भेद यह है, कि भगवान दास ने मुझ पर पिस्तौल अवश्य चलाई, किन्तु उससे मुझे एक हलकी सी चोट पहुँची और मैं बेहोश हो गई। होश आने पर मैंने देखा कि उस स्थान पर कोई नहीं है। अतः बाहर आई और चुपके से छिपती हुई अपने घर चली गई और रात ही रात अपना ज़रूरी सामान लेकर परदेश चली गई।

जज—भगवान दास के इस कृत्य पर तुमने अदालत में नालिश क्यों नहीं की ?

मुन्नी—इस लिये, कि भगवान दास चाहे जैसे हों फिर भी बहन सरस्वती के स्वामी हैं—मैं अपनी ओर से उन्हें किसी

तरह का दुःख नहीं पहुँचा सकती। अचानक मुझे इसी शहर के एक मनुष्य द्वारा सूचना मिली, कि मेरी हत्या के अपराध में निर्दोष सरस्वती जेल में पड़ी है और आज उसके फैसले का अन्तिम दिवस है। अतः मैं श्रीमान् के चरणों में उपस्थित हुई।

जज—मुन्नी! तेरा विचार सराहनीय है। सत्य है नारी का यथार्थ रूप कभी नहीं पहचाना जा सकता।

वकील—यह हमारे बृटिश सरकार का इकबाल है।

जज—अच्छा, तुम सब को मुक्त किया जाता है।

(कोर्ट बर्खास्त)
(जज वगैरह का जाना)

प्रेम०—धन्य हो। मुन्नी! तुम वास्तव में वेश्या नहीं—वेश्या के रूप में देवी हो!

सर०—बहन! तुमने आज एक नहीं, किन्तु कई जीवों को मृत्यु के मुख से बचा लिया।

दीना०—मुन्नी! हम लोग किस मुख से और कहाँ तक तुम्हारी प्रशंसा करें! तुमने आज सागर में डूबते हुए हमारे बेड़े को उबार लिया।

मुन्नी—नहीं भाई! मुझ घृणित की प्रशंसा कुछ भी नहीं। मेरे ही कारण तो इतनी विडम्बना हुई।

सर०—बहन! तुम यह अपने मुख से कह रही हो, अन्यथा इस मिथ्यावादी संसार में तुम्हीं एक हम लोगों की रक्षा करने वाली और हमें आपत्ति से बचाने वाली हो।

दीना०—परमात्मन्! तू बड़ा ही कारसाज है। तृण से कुलिश और कुलिश से तृण करना तेरा क्षणिक खेल है। आज
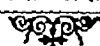
तूने संसार को सत्य का भेद दिखा दिया—दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया।

भग०—मुन्नी! देवी मुन्नी! यह तुम्हारा हत्यारा कुल कलंकी भगवानदास, आज तुमसे अपने अपराध की क्षमा माँग रहा है।

मुन्नी—भाई भगवान दास! यह सब समय का फेर है—बीती बातों का पछतावा क्या? जो हो गया उसे भूल जाओ। तुम्हें क्षमा देने वाली मैं नहीं, यह बहिन सरस्वती है।

भग०—प्रिये, सरस्वती!

सर०—नाथ! अब इन बातों को हृदय से हटाइये, उस परमात्मा को धन्यवाद दीजिये, कि जिसने हम लोगों को अभय दान दिया।

भग०—पिता तुल्य दीनानाथ! मैंने आपको बड़े ही कटु-वचन कहे, आशा है, कि आप पुत्र समझ कर मुझे क्षमा करेंगे।

दीना०—प्यारे भगवानदास! यह तुम क्या कहते हो? मैं तुम्हारा वही सेवक हूँ—मेरी तरफ से अपने हृदय में कोई खेद न लाओ। अब यहाँ से शीघ्र चलो और भोलानाथ जी का दर्शन कर अपने को कृतार्थ करो। तुम लोगों के विछोह में वे पागल हो गये थे, परन्तु भगवान की कृपा से अब कुछ अच्छे हैं।

सर०—जब तो हमें चल कर शीघ्र उनके व्याकुल हृदय को शान्त करना चाहिये—उनके चरणारविन्द से अपने को कृतार्थ बनाना चाहिये।

दीना०—हाँ-हाँ-शीघ्र चलिये।

(सबों का जाना)

भोलानाथ का मकान।

(भोलानाथ, प्रेमशंकर, दीनानाथ, मुन्नी, भगवानदास और सरस्वती का आना)

भोला०—आहा! आज का दिन कैसा सुखदायक और शोभायमान है, मानो यह सारा विश्व एक हरा भरा उद्यान है। पुत्री-मुन्नी! तुम्हें कौन वेश्या कह सकता है? तुम स्त्री रूप में देवी हो—स्वर्ग की प्रतिभा और नारी-जाति की शोभा हो। तुमने आज जगत् को दिखला दिया, कि भारत में अब भी ऐसी ऐसी महिलायें मौजूद हैं।

मुन्नी—श्रीमन्! यह आपकी उदारता और बड़प्पन है जो मेरे प्रति ऐसा विचार है। अन्यथा वह वेश्या जिसके स्वर में छल, हंसी में कपट और आत्मा में पाप का केन्द्र हो, जो अपने जीवन का सार, धोका और कृतघ्नता जानती हो, वह कब सराहनीय है?

भोला०—नहीं नहीं, मुन्नी! यह मैं कैसे कह सकता हूँ? तुम्हारे आदर्श चरित्र की ध्वनि आज जगत् में चारों ओर गूँज रही है।

मुन्नी—परन्तु जिसकी सहस्रों बहनें वेश्यावृत्ति में अपना

सर्वनाश कर रही हों वह कब आदर्श कहला सकती है। किस कारण सत्यता की समता को पा सकती है?

भोला०—यह तुम्हारा कहना यथार्थ है, परन्तु तुम्हारे चरित्र से वे भी सुधर जायेंगी—अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर सुपथ पर आ जायेंगी।

मुन्नी—तो कृपा कर अब मुझे आज्ञा दीजिये।

भोला०—क्यों? कहाँ जाने का विचार है?

मुन्नी—अपनी इच्छा तो अब यही है, कि शेष जीवन देश की बहनों के सुधार में समाप्त करूँ और उन्हें इस कुमार्ग से हटा कर सुमार्ग पर लाने की चेष्टा करूँ।

भोला०—यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। मेरी भी इच्छा है, कि अब मैं भी यह घर-द्वार सब भगवानदास और सरस्वती को सौंप कर काशीवास करूँ।

प्रेम०—श्रीमन्! सचमुच में देवी मुन्नी हिन्दू-नारियों में एक रत्न हैं। इनका विचार और परमार्थ का ध्यान सराहनीय है।

भोला०—भाई दीनानाथ—प्रेमशंकर! तुम लोगों ने मेरे लिये जो जो कष्ट उठाये हैं उस उपकार को मैं आजीवन नहीं भूल सकता। मेरे हृदय-कोष में कोई शब्द नहीं है जिनके द्वारा मैं तुम लोगों की कृतज्ञता प्रकट करूँ।

प्रेम०—श्रीमन्! यह आप क्या कहते हैं। व्यर्थ क्यों हमारी प्रशंसा कर मुझे लज्जित बनाते हैं?

इच्छुक मन था श्रीचरणों का सेवा की थी अभिलाषा।
नाटक-जीवन पूर्ण किया मैं सेवा कर हिन्दी—भाषा॥

दीना०—सफल मनोरथ आज हुआ जो थी मन में प्रत्याशा।
फूले फले "दास" यह प्रेमी पूर्ण हुई "मेरी आशा" ॥

मुन्नी—नाट्यभवन में नाटक करके अभिनय पूर्ण किया प्रभुने।
आशा पर है जीवन निर्भर, जीवन है "मेरी आशा" ॥

भोला०—पुत्र, भगवानदास! आओ, आगे बढ़ो—और पुत्री-सरस्वती का कर अपने कर में लेकर परमात्मा का ध्यान करो। हमारा अन्तिम आशीर्वाद यही है कि तुम दोनों हर्ष से फूलो-फलो और देशहितैषी बनो।

सब—ओम् शान्तिः ३ !!!

गाना—

सब—चिर जीओ तुम युगल सप्रेमी।
सुखमय जीवन व्यतीत करो तुम ॥
सदा प्रफुल्लित हर्ष लहो तुम।
बनो समाज-सुधारक नेमी ॥ चिर०—
अन्न धन जन से पुत्र-पौत्र से—
"दास" पूर्ण रहो भारत सेवी—॥ चिर०—

पोरस सिकन्दर